॥ ओ३म् ॥

श्री

चाणक्य नीति दर्पण

[पद्यानुवाद—भाषा टीका एवं दोहार्थ सहित]

●

मूल लेखक : महर्षि चाणक्य

अनुवादक : श्री विष्णुदत्त 'श्रीश'

●

देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाजार दिल्ली–६
फोन २६१०३०, २६४१९१, २६५४०३

मूल्य सवा रुपया] [विदेशों में ढाई शिलिंग

प्राप्ति स्थान
देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाजार दिल्ली-६

विदुर नीति

अनुवादक—श्री राजेन्द्र द्विवेदी प्रभाकर
(हिन्दी टीका सहित)

इस पुस्तक में माननीय परम नीतिज्ञ बुद्धिमान् महात्मा विदुर की वे नीतियां वर्णन की गई हैं जिनसे महाभारत जैसे बृहत् ग्रन्थ में पद-पद पर नीतिज्ञता प्रकट होने से, सत्यार्थी पांडवों की सर्वत्र रक्षा हुई। इन नीतियों द्वारा मूर्ख-से-मूर्ख मनुष्य भी विद्वान्, बुद्धिमान्, चतुर नीतिज्ञ बनकर संसार के सभी कार्य बड़ी सफलता और नीतिज्ञता से सम्पादन कर सकता है। यह पुस्तक इस योग्य बनाई गई है कि सब पाठशालाओं में पढ़ाई जाये, लड़कों को इनाम में दी जाय और घर-घर में इसका प्रचार और पठन-पाठन हो। हम यह मुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि इसमें सोना और सुगन्ध दोनों ही सम्मिलित हैं। इन्हें पढ़कर मनुष्य एक अमूल्य उपदेश ग्रहण कर सकता है।

इस पर भी पुस्तक का मूल्य २॥) ढाई रुपया डाक व्यय अलग।

मुद्रक
टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस,
सोनीपत (निकट दिल्ली)

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज पंजाबी बाग
पुस्तकालय
सं० .....
नई दिल्ली-२६

1237

श्रद्धांजलि—

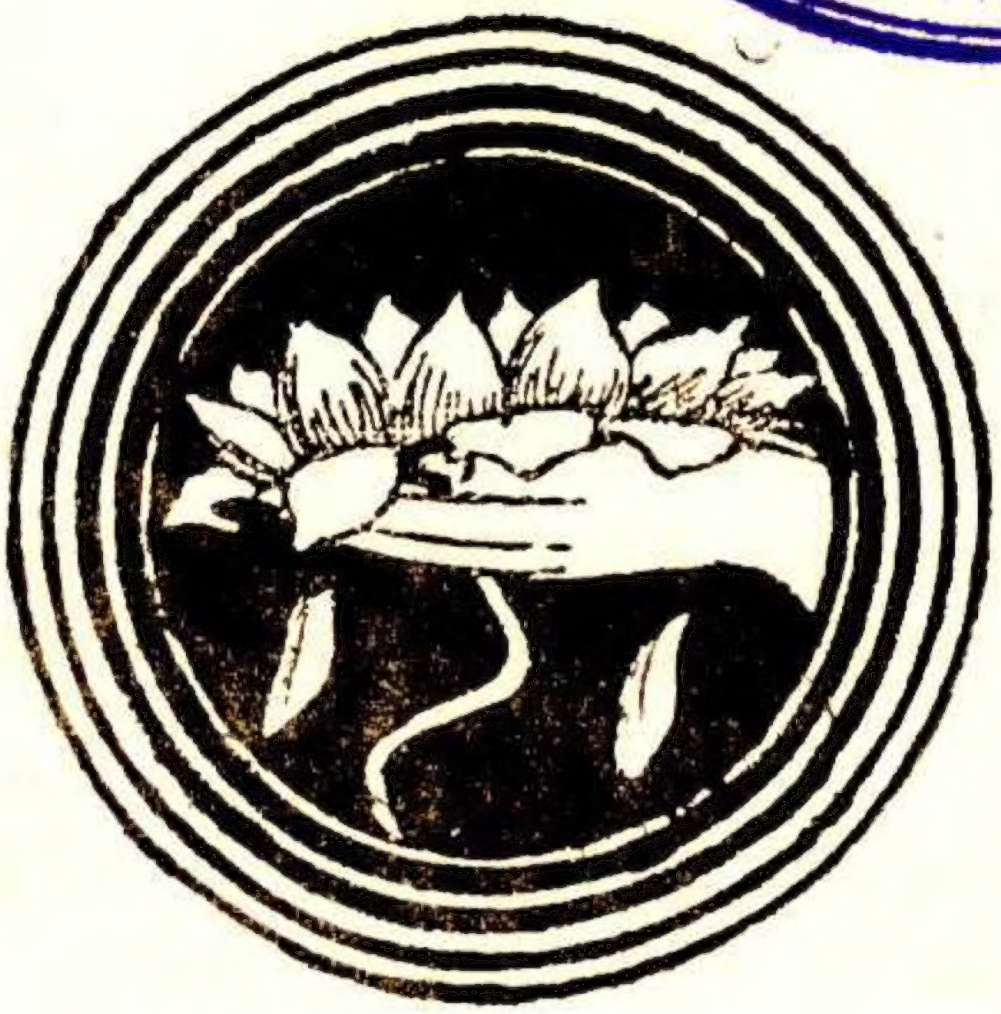

जिनके जीवन की मैं कमाई है,

अपने उन्हीं को—

सादर सप्रेम समर्पित

—विष्णुदत्त 'श्रीश'

करते न चिन्ता आप अपनी, स्वप्न में भी हो कभी।
भूल जाते, इक विष्णु का तुम, ध्यान कर चिन्ता सभी॥
फिर समर्पण क्यों न करूं मैं, तुच्छ सी यह भेंट भी।
स्वीकार इसको तात करना, देय आशीर्वाद भी॥

'श्रीश'

दो शब्द

प्रिय पाठक वृन्द !

श्री विष्णु गुप्त चाणक्य द्वारा रचित चाणक्यनीति का भाषानुवाद आपके सम्मुख प्रस्तुत है। यह पुस्तक आधुनिक काल में व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के लिए समान रूप में उपयोगी तथा पथ-प्रदर्शक हो सकती है।

पुस्तक की मांग होने पर तथा समय को देखते हुए हमने इसे संक्षिप्त एवं पूर्ण अनुवाद सहित प्रकाशित किया है।

चाणक्यनीति दर्पण बडी (अनुवाद दोहा तथा दोहार्थ सहित) मूल्य १।।।) पौने दो रुपये भी छपकर तैयार है।

प्रकाशक

❀ श्री गणेशाय नमः ❀

श्री चाणक्यनीति शास्त्र

अथ प्रथमोऽध्याय ॥१॥

—:❀:—

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥१॥

हे सर्व व्यापक और सर्व शक्तिमान, तीनों लोकों के स्वामी, मैं तुम्हें सिर झुका कर प्रणाम करके राजनीति की गाथा का वर्णन करता हूं ॥१॥

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याकार्यम् शुभाशुभम् ॥२॥

जो मनुष्य इस पुस्तक का नित्य नियम से विधिवत् पाठ करता है वही मनुष्य गुणवान् कहलाता है, वह मनुष्य शुभ-अशुभ करने योग्य और बिना करने योग्य, सबको ही जान लेता है ॥२॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हित काम्यया ।
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥३॥

इस उद्देश्य से हम नीति का वर्णन करते हैं कि इससे अनन्त ज्ञान प्राप्त हो जाय और इस पुस्तिका के पठन मात्र से ही नीति को जान कर संसार का भला हो जावेगा ॥३॥

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ।
दुःखितैः संप्रयोगेन पण्डितोऽप्यवसीदति ॥४॥

मूर्ख शिष्य को उपदेश देने से, दुःखियों दीनों के साथ व्यवहार करने से और दुष्टा स्त्री के पालन करने से पण्डित व ज्ञानी मनुष्य भी दुःखी हो जाते हैं ॥४॥

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥५॥

कपटी मित्र, दुष्ट स्त्री, सांप वाले घर में रहना और नौकर से जवाब कर सिर पर चढ़ाना, इन चारों बातों को काल के समान दुःखदायी समझना चाहिए ॥५॥

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपिधनैरपि ॥६॥

श्री ईश (धनवान्) होकर आपत्तिकाल के लिए भी धन का संग्रह करना ही भला है, उससे अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि आपत्तिकाल में जब सब संसार छोड़ देता है तो अपना संगृहीत धन और स्त्री ही रक्षा करते हैं ॥६॥

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतस्य किमापदः ।
कदाचिच्चलिता लक्ष्मीः संचितोऽपि विनश्यति ॥७॥

धन को एकत्र करने का क्या लाभ है ? जब धन की देवी माया चली जाती है, तो फिर धन भी नहीं ठहरता और इससे धनवान भी दुःखी हो जाते हैं ॥७॥

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बांधवाः ।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति वासं तत्र न कारयेत् ॥८॥

जिस देश में सत्कार, जीविका, विद्या प्राप्ति का लाभ और बन्धु बाधव नहीं हैं, श्रीश कवि कहते हैं कि ऐसे स्थान पर कभी नहीं बसना (रहना) चाहिए ॥८॥

धानिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः ।
पंचम् यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥९॥

ऐसे स्थान पर रहना ठीक है जहां जल के लिए नदी, शिक्षा को वेद जानने वाला ब्राह्मण, बीमारी को वैद्य, कुसमय में ऋण देने को धनी और रक्षा करने को राजा हो ॥९॥

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पंचम् यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संगतिम् ॥१०॥

जिनमें भय, लज्जा, कुशलता, त्यागशक्ति और जीविका पांचों नहीं हैं उनके पास नहीं रहना चाहिये ॥१०॥

जानीयात् प्रेषणे भृत्यान् बान्धवात् व्यसनागमे ।
मित्रं चापत्तिकाले तु भार्यां च विभवक्षये ॥११॥

काम पड़ने पर नौकर की, दुःख पड़ने पर भाई की, विपत्ति पड़ने पर मित्र की, और कुसमय में धन नष्ट होने पर स्त्री की पहिचान होती है ॥११॥

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यः तिष्ठति स बांधवः ॥१२॥

बीमार पड़ने पर, दुःख पहुंचने पर, अकाल के समय, बैरियों से कष्ट पड़ने पर, राजा, कचहरी और मर्घट में जो सहायता देता है वही बन्धु समझा जाना चाहिये ॥१२॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिसेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि ॥१३॥

जो निश्चित वस्तुओं को छोडकर, अनिश्चत वस्तुओं की सेवा करने को भागता है, उसको अनिश्चित वस्तु तो मिलती ही नहीं और निश्चित वस्तु भी चली जाती है ॥१२॥

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ॥
रूप शीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥१४॥

विवाह समान कुल में योग्य है। बुद्धिमान् को उत्तम कुल की कुरूपा कन्या भी वर लेनी चाहिये और नीच कुल की सुन्दरी को भी छोड़ देना चाहिये ॥१४॥

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृंगिणां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥१५॥

नदियों का, स्त्रियों का राजकुल का जिसके हाथ में हथियार हो उसका, नाखून और सींग वाले जीवों का विश्वास करना ही मृत्यु को बुलाना है। इनका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥१५॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि कांचनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥१६॥

उत्तम विद्या और चतुर शीलवान् स्त्री यदि दुष्ट कुल में भी हो तो भी उसे नहीं छोड़ना चाहिये। विष पड़े अमृत और अपवित्र वस्तु में पड़े सोने को भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥१६॥

आहारो द्विगुण स्त्रीणां लज्जा चापि चतुर्गुणा ।
साहसं षड्गुणं चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥१७॥

स्त्रियों में मनुष्य से आहार (भोजन) दुगना, लाज चार गुनी, साहस छह गुना और काम आठ गुना अधिक होता है ॥१७॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः । २॥

—:❀:—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणाम् दोषाः स्वभावजा ॥१॥

झूठ, साहस, बहुत अपवित्रता, मूर्खता, कपट क्रोध, अत्यन्त लोभ, बिना विचारे किसी काम को कर बैठना, ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं ॥१॥

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरांगना ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥२॥

सुन्दर स्त्री अच्छा भोजन, भगवान के दर्शन, दान की शक्ति धन और काम शक्ति बड़ी कठिनता से मिलती हैं। केवल भाग्यवान् मनुष्य ही इन्हें पा सकते हैं ॥२॥

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी ।
विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य इहैव हि ॥३॥

धन में सन्तोष, आज्ञाकारी स्त्री और पिता का भक्त पुत्र जिनको मिलते हैं, उनको यहीं पर ही स्वर्ग मिल जाता है ॥३॥

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रंयत्र विश्वासः सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥४॥

वे ही पुत्र हैं, जो पिता के भक्त हैं। वे ही पिता हैं जो पुत्र का पालन भली प्रकार करते हैं। जिस पर विश्वास किया जा सके वही सच्चा मित्र है और जो सुख दे सके वही अच्छी स्त्री है ॥४॥

परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्ज्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥५॥

जो मुंह के सामने बाहरी रूप से मीठी-मीठी बातें करे और पीछे अन्तःकरण से बुराई करे, ऐसे मित्र से भला कब निभ सकती है, उसे उस विष के भरे हुए घड़े के समान घातक जान कर छोड़ देना चाहिये जिसके मुख में दूध हो ॥५॥

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वगुह्यं प्रकाशयेत् ॥६॥

कुमित्र पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए और मित्र पर भी सदैव विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि कौन जानता है कि कब मित्र को क्रोध आ जाय और वह गुप्त भेद को खोल कर सत्यानाश कर दे ॥६॥

मनसा चिन्तितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत् ।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्य्यं चापि नियोजयेत् ॥७॥

मन की सोची हुई बात को कभी वाणी द्वारा प्रकट नहीं करना चाहिये । सदैव गुप्त रूप से काम करना चाहिये जिससे काम के बिगड़ जाने पर संसार हँसी न उड़ाये ॥७॥

कष्टश्च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम् ।
कष्टात् कष्टतरं चैव परगेहे निवासनम् ॥८॥

यद्यपि मूर्खता से दुःख पैदा होता है और जवानी से तो उससे भी अधिक दुःख होता है, परन्तु दूसरे घर में रहने से जो मानहानि होती है उससे तो बहुत ही दुःख होता है ॥८॥

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥९॥

प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता, प्रत्येक पर्वत पर रत्न नहीं मिलते, सब हाथियों में मोती नहीं होता और प्रत्येक स्थान पर साधु और सज्जन नहीं मिलते ॥९॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः ।
नीतिज्ञाः शीलसम्पन्ना भवन्ति कुलपूजिताः ॥१०॥

बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिये कि वे अपनी सन्तान को शुभ कर्मों में लगावें, क्योंकि नीति के जानकार श्रेष्ठ शीलवान् पुत्र ही कुल में पूजे जाते हैं ॥१०॥

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥११॥

वे माता-पिता शत्रु के समान हैं जो अपने पुत्रों को पढ़ाते नहीं। वे सभा में इस प्रकार शोभायमान नहीं होते जैसे हंसों के बीच बगुला नहीं सोहता ॥११॥

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः ।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥१२॥

अपने प्रिय शिष्य और पुत्र को कभी लाड़ नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये लाड़ करने से दुष्ट और ताड़ने (धमकाने) से सोने के समान उज्ज्वल सन्त बन जाते हैं ॥१२॥

श्लोकेन या तदर्द्धेन तदर्द्धाऽर्द्धाक्षरेण वा ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥१३॥

श्लोक को नित्य प्रति पढ़ना चाहिये। यदि पूरा नहीं तो आधा और यदि आधा नहीं तो चौथाई तो अवश्य पढ़ें। इस प्रकार दान और अध्ययन आदि शुभ कर्मों के द्वारा दिन को अच्छी प्रकार से बिताना चाहिये ॥१३॥

कान्ता-वियोगः स्वजनापमानो
ऋणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा।
दरिद्रभावो विषमा सभा च
विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम् ॥१४॥

स्त्री से वियोग, दुष्टों की सभा में जाना, अपने जनों से अपमान, कर्जा, खोटे, राजा की सेवा और दरिद्रता ये बस आग के बिना ही शरीर को जलाते हैं ॥१४॥

नदी तीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी।
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम् ॥१५॥

हे भ्राता! जो स्त्री दूसरों के घरों में घूमती फिरें, जो वृक्ष नदी तट पर हों, जो राजा मन्त्री न रखता हो, ये सब शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्य बलं तथा।
बलं विद्या च वैश्यानां शूद्राणां च कनिष्ठता ॥१६॥

ब्राह्मण का बल विद्या, राजा (क्षत्रिय) का बल सेना, वैश्यों का बल धन और सुख प्राप्त करना और शूद्रों का बल इनकी सेवा करना है ॥१६॥

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्ननृपं त्यजेत्।
क्षीणफलवृक्षं पक्षी भुक्त्वा चाभ्यागतो गृहम् ॥१७॥

प्रजा से शक्तिहीन राजा, पक्षी से फलहीन वृक्ष, वेश्या से धनहीन मनुष्य और भोजन करने के पश्चात् अतिथि से घर छुट जाता है, अथवा वे छोड़ देते हैं ॥१७॥

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम् ।
प्राप्तविद्या गुरुं शिष्या दग्धारण्यं मृगास्तथा ॥१८॥

जिस प्रकार ब्राह्मण दक्षिणा लेकर अपने सुयशी यजमान को त्याग देते हैं, उसी प्रकार शिष्य विद्या प्राप्त करके अपने गुरु को त्याग देते हैं ॥१८॥

दुष्ट जनों की प्रीति सदा छोड़ने योग्य होती है, मृग अग्नि से जलते हुए वन को छोड़कर हमें अच्छी नीति बतलाता है ॥१८॥

दुराचारो दुर्दृष्टिः दुरावासी च दुर्जनः ।
यन्मैत्री क्रियते पुंसा स तु शीघ्रं विनश्यति ॥१९॥

यदि दुष्ट और बुरे आचरण और बुरी 'पापमय' दृष्टि वाले और बुरे स्थान में रहने वालों से मित्रता हो जाय तो वे शीघ्र ही मित्र का नाश करा देते हैं ॥१९॥

समाने शोभते प्रीतिः राज्ञि सेवा च शोभते ।
वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥२०॥

बराबर वालों में प्रीति शोभा देती है और राजाओं की नौकरी शोभा देती है । व्यवहार में व्यापार और घर के अन्दर सुन्दर स्त्री शोभा देती है ॥२०॥

॥ इति द्वितीयोऽअध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

—:o:—

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना के न पीडिताः ।
व्यसनं केन हि प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम् ॥१॥

किसका वंश दोष रहित है, किसको रोग नहीं सताते, कौन ऐसा व्यक्ति है जो कभी दुःखी नहीं हुआ और कौन सदा सुख भोगता है ॥१॥

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥२॥

बुद्धिमान् मनुष्य भाषा सुनकर देश को और आचरण से कुल को, सम्भ्रम देखकर स्नेह और भोजन देखकर शरीर को पहचान लेते हैं ॥२॥

सत्कुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मे योजयेत् ॥३॥

कन्या को श्रेष्ठ कुल में देना चाहिए, पुत्र को विद्वान् बनाना चाहिए, शत्रु को बुरे व्यसनों में फंसाना चाहिए और मित्र को धर्म के कार्यों में लगाना चाहिए ॥३॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ।
सर्पः दशति काले तु दुर्जनस्तु पदे पदे ॥४॥

दुष्ट और सांप में सांप को ही अच्छा समझना चाहिए, क्योंकि सांप तो काल आने पर ही काटता है और दुर्जन सदा अपमान कर दुःखी करता रहता है ॥४॥

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् ।
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम् ॥५॥

राजा इसलिए कुलीनों का संग्रह करते हैं, क्योंकि कुलीन आदि, मध्य, अन्त; अर्थात् किसी दशा में भी राजा को नहीं छोड़ते ॥५॥

प्रलये भिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः ।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः ॥६॥

साधु और समुद्र की बराबरी करना व्यर्थ है, क्योंकि प्रलय होने पर समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ देता है, परन्तु साधु फिर भी अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता ॥६॥

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ।
भिनत्ति वाक्यशल्येन निर्दशां कण्टको यथा ॥७॥

मूर्ख मनुष्य को जो कि दो पैर का पशु है, पशु के समान ही छोड़ देना चाहिए, क्योंकि मूर्ख आदमी कड़वी वाणी से सन्तों को इस प्रकार बींधता है जैसे कांटा ॥७॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥८॥

विद्याहीन मनुष्य श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर तथा रूप यौवन सम्पन्न होते हुए भी उसी प्रकार शोभा को प्राप्त नहीं होता, जिस प्रकार गन्धहीन टेसू का फूल अच्छा नहीं लगता ॥८॥

कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम् ।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ॥९॥

कोयल का मीठा स्वर ही उसकी शोभा है, कुरूप मनुष्य को विद्या ही शोभा है, तपस्वियों को क्षमा करना शोभा देता है और पातिव्रत्य धर्म स्त्री को शोभा देता है ॥९॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥१०॥

कुल की रक्षा के लिए एक को छोड़ देना चाहिए। ग्राम के लिए कुल को और देश के हित ग्राम को तथा आत्मा के लिए पृथ्वी को ही छोड़ देना उचित है ॥१०॥

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरतो भयम् ॥११॥

उपाय करने पर दरिद्रता नहीं रहती, जाप करने वाले को पाप नहीं रहता, मौन रहने से लड़ाई नहीं होती और जागने वाले के पास भय नहीं आता ॥११॥

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः ।
अतिदानाद् बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत् ॥१२॥

अति सुन्दरता के कारण सीता हरी गई, अति गर्व करने पर रावण मारा गया और बहुत दान देने पर बलि को पाताल जाना पड़ा, इसीसे उसका मान घटा। इस कारण अति को सब जगह छोड़ देना चाहिए ॥१२॥

कोऽअति भारः समर्थानां किं च व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां कोऽप्रियः प्रियवादिनाम् ।।१३।।

शक्तिमान् समर्थ को कुछ भी करना भारी नहीं, विद्वान् के लिए कोई भी देश विदेश नहीं होता, व्यापारियों के लिए कोई भी स्थान दूर नहीं होता और मीठा बोलने वाले के लिए कोई भी अप्रिय नहीं होता ।।१३।।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितं स्याद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ।।१४।।

सुपुत्र और सुगन्ध वाले वृक्ष की एक ही दशा होती है, जिस प्रकार एक सुगन्धित वृक्ष अपनी गन्ध से सब वन को सुगन्धित कर देता है, उसी प्रकार एक सुपुत्र सब कुल को प्रसिद्ध कर देता है ।।१४।।

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ।।१५।।

जिस प्रकार जलता हुआ एक वृक्ष सम्पूर्ण वन को जला देता है, उसी प्रकार कुपुत्र भी सदा अपने कुल को जरा (हीन) दशा करके उसका नाम निशान मिटा देता है ।।१५।।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी ।।१६।।

यदि बेटा सज्जन और विद्वान् है तो एक भी कुल को आनन्दित कर देता है, जिस प्रकार रात्रि को चन्द्रमा आनन्ददायक बना देता है ।।१६।।

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः ।
वरमेकः कुलालम्बो यत्र विश्राम्यते कुलम् ।।१७।।

ऐसे बहुत-से पुत्र होने व्यर्थ हैं जो शोक और सन्ताप को देने वाले हों। कुल को सहारा देने वाला एक ही पुत्र अच्छा है, जिससे कुल विश्राम पाता है ॥१७॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥१८॥

पुत्र को ५ वर्ष तक प्रेम करना चाहिए और फिर १० वर्ष तक ताड़ना करे, इसके पश्चात्, अर्थात् १६ वर्ष के पीछे पुत्र से मित्र के समान आचरण करे ॥१८॥

दुर्भिक्षे च भयावहे ।
असाधुजनसंगे यः पलायति स जीवति ॥१९॥

अकाल पड़ने पर, उपद्रव उठने पर, शत्रु के आक्रमण करने पर और दुष्ट जनों का संग होने पर, जो भाग जाता है वही जीवित रहता है ॥१९॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
जन्मजन्मानि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम् ॥२०॥

जो मनुष्य, मनुष्य जन्म पाकर भी, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनमें से कुछ भी नहीं रखते उनका जन्म लेने का फल केवल मृत्यु ही होता है ॥२०॥

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसञ्चितम् ।
दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥२१॥

जहां अन्न भरपूर एकत्र रहता है और जहां मूर्ख नहीं पूजे जाते तथा स्त्री पुरुष में कलह नहीं होता, वहां लक्ष्मी देवी आप ही विराजमान होकर शोभा देती हैं ॥२१॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

—:o:—

आयुः कर्म च वित्तं विद्या निधनमेव च ।
पंचैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥१॥

यह निश्चय है कि आयु, कर्म, धन, विद्या, मृत्यु ये पांचों बातें जब जीव (प्राणी) मां के गर्भ में होता है, तभी लिख दी जाती हैं ॥१॥

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रा मित्राणि बान्धवाः ।
च तैः सह गन्तारस्तद्धर्मात्सुकृतं कुलम् ॥२॥

सुसंग जो करते रहें, कुल सुकृत भरपूर ॥

पुत्र, मित्र, बन्धु, बांधव ये साधुजनों से दूर हो जाते हैं और जो इनका सत्संग करते रहें उनके पुण्य से उनका कुल सुकृत हो जाता है ॥२॥

दर्शनध्यानस्पर्शैर्मत्स्यी कूर्मी च पक्षिणी ।
शिशुम्पालयते नित्यं तथा सज्जनसंगतिः ॥३॥

जिस प्रकार मछली दर्शन से, पक्षी स्पर्श करके और कछुवी केवल ध्यान से ही अपने बच्चों को पालती है। उसी प्रकार सज्जन मनुष्य भी दूसरे मनुष्यों को स्पर्श, दर्शन और ध्यान के द्वारा ही पालते हैं ॥३॥

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः ।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति ॥४॥

जब तक मृत्यु नहीं आती और देह भी नीरोग है, तब तक ही पुण्य कमाई करके आत्मा का हित किया जा सकता है, फिर मृत्यु हो जाने पर कोई क्या करेगा ॥४॥

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी ।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तधनं स्मृतम् ॥५॥

विद्या में कामधेनु के समान गुण होता है । यह विपदा के समय भी रक्षा करती है । देश और विदेश में, अर्थात् सब काल में माता के समान हमारी रक्षा करती है । अतः इसको गुप्त धन कहना चाहिए ॥५॥

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः ।
एकश्चंद्रस्तमो हन्ति न च तारा सहस्रशः ॥६॥

यदि सुपुत्र एक ही हो तो वह अवगुणी सैकड़ों पुत्रों से अच्छा है, क्योंकि हजारों तारे जब पृथ्वी के अन्धकार को नहीं मिटा सकते तो अकेला चन्द्रमा ही अन्धकार मिटा देता है ॥६॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वरः ।
मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥७॥

मूर्ख पुत्र चिरजीवी होने के बदले यदि पैदा होते ही मर जाय तो अच्छा है । इससे अधिक दुःख नहीं होता, परन्तु यदि न मरे तो जीवन भर जलाता रहता है ॥७॥

कुग्राम-वासः कुलहीन-सेवा ।
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ॥
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या ।
विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ॥८॥

विधवा लड़की, मूर्ख पुत्र, बुरा भोजन, दुष्ट लड़का, झगड़ालू स्त्री, नीच मनुष्य की सेवा, बुरे स्थान पर रहना; ये छहों बिना आग के ही शरीर को जला देते हैं ॥८॥

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् भक्तिमान् ॥९॥

उस गाय से क्या लाभ जो दूध न दे, न गाभिन होवे । वह तो भक्तिरहित मूर्ख पुत्र के समान व्यर्थ है, अर्थात् न मूर्ख पुत्र सुख देता है न दुग्धरहित गाय ॥९॥

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः ।
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च ॥१०॥

संसार में दुःखी मनुष्यों को शांति प्रदान करने वाले तीन साधन चाणक्य मुनि ने बतलाये हैं, (१) सन्तान, (२) स्त्री और (३) सज्जनों की संगति ॥१०॥

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥११

राजा लोग एक बार ही आज्ञा देते हैं, पण्डित लोग एक ही बार बोलते हैं और कन्या का दान एक ही बार किया जाता है । ये तीनों काम एक ही बार होते हैं ॥११॥

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः ।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभी रणम् ॥१२॥

तप अकेले में, गाना तीन से, पढ़ना दो से, चार से पंथ चलना, पांच से खेती और बहुतों से युद्ध भली-भांति होता है ॥१२॥

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या या सत्यवादिनी ॥१३॥

वह स्त्री जिस पर पति की प्रीति है और जो स्वयं भी प्रतिव्रता, होशियार और पवित्र है जो सदा सत्य बोलती रहे, वही सुभार्या है; अर्थात् दान, मान, पोषण और पालन के योग्य है ॥१३॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशा शून्याऽबन्धवाः ।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यं दरिद्रता ॥१४॥

अपुत्र का घर सूना है, बन्धुरहित की दिशा सूनी है, मूर्ख का हृदय सूना है और दरिद्रता के होने पर सभी कुछ सूना है ॥१४॥

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम् ।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥१५॥

बिना पचे भोजन विष है, बिना अभ्यास के शास्त्र विष हो जाता है। दरिद्रों को सभा विष और वृद्ध को युवती विष जान पड़ती है ॥१५॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान्बान्धवान्त्यजेत् ॥१६॥

प्रीतिहीन समाज, दयारहित धर्म, विद्या रहित गुरु का त्याग उचित है। जो स्त्री क्रोध प्रकट करती हो उसको भी त्याग देना चाहिए ॥१६॥

अध्वा जरा मनुष्याणां वाजिनां बन्धनं जरा ।
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा ॥१७॥

मनुष्यों का मार्ग चलना बुढ़ापा है, घोड़ों को बांध रखना बुढ़ापा है, स्त्री को अमैथुन बुढ़ापा है और वस्त्रों को धूप बुढ़ापा है; अर्थात् वे निर्बल हो जाते हैं ॥१७॥

कः कालः कानि मित्राणि को देशः को व्ययागमौ ।
कस्याहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥१८॥

देश कौन है, काल क्या है, व्यय कितना है, आय कितनी है, मित्र कौन है और मुझ में कितनी शक्ति है; मनुष्य को इन सब बातों का विचार करते रहना चाहिए ॥१८॥

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् ।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥१९॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनके देवता अग्नि है। मुनियों के हृदय में ही देवता वास करते हैं, अल्प बुद्धि वालों को मूर्तियों में और समदर्शियों को सब स्थानों में देवता मिलते हैं ॥१९॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

—:o:—

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥१॥

स्त्रियों का गुरु उनका पति है और आया हुआ अतिथि सब का ही गुरु है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का अग्नि गुरु है तथा चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मण होता है ॥१॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते ।
निघर्षणच्छेदन—तापताडनैः ॥
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते ।
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥२॥

जिस प्रकार सोने को काटकर, तपाकर, घिसकर, पीटकर उसकी जांच की जाती है, उसी प्रकार त्याग, गुण और कर्म, इन चारों प्रकारों से पुरुष की भी परीक्षा की जाती है ॥२॥

तावद् भयेषु भेतव्यं यावद् भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं वीक्ष्य प्रहर्तव्यमशङ्कया ॥३॥

जब तक भय पास नहीं आता, तब तक तो उससे डरते रहने में कुछ दोष नहीं, परन्तु भय को अपने निकट आता हुआ देखकर प्रहार करके उसे नष्ट कर देना ही उचित है ॥३॥

एकादशसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।
न भवन्ति समाः शीले यथा बदरिकण्टकाः ॥४॥

एक ही गर्भ में उत्पन्न और एक ही नक्षत्र में पैदा होने वाले शील में समान नहीं होते। जैसे बेर और कांटे ॥४॥

निःस्पृहो नाधिकारी स्यन्नाकामो मण्डनप्रियः ।
नो विदग्धः प्रियं ब्रूयात् स्पष्टवक्ता न वञ्चकः ॥५॥

कामहीन मनुष्य कामुक (कामोत्तेजक) वस्तुएं नहीं चाहता और इच्छाहीन मनुष्य अधिकार नहीं चाहता। चतुर मनुष्य कटु वचन नहीं बोलते और साफ कहने वाले के मन में छल नहीं होता ॥५॥

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः ।
दुर्भगाणां च सुभगाः कुलटानां कुलांगनाः ॥६॥

पण्डितों के लिए मूर्ख, दरिद्री मनुष्यों के लिए धनी, विधवा स्त्रियों के लिए सुभगा और कुल वधुओं के लिए कुलटा शत्रु हैं ॥६॥

आलस्योपहता विद्या परहस्ते गतं धनम् ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥७॥

दूसरे के हाथों में पड़कर लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार आलस्य आने से विद्या भी नष्ट हो जाती है। कम बीज से खेत नष्ट सा रहता है। और बिना सेनापति के सेना नष्ट हो जाती है ॥७॥

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलम् शीलेन धार्यते ।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते ॥८॥

अच्छे गुणों वाले से सदैव ज्ञान का बोध होता है। मनुष्य नेत्रों द्वारा ही अपना क्रोध प्रकट करते हैं। शीलता अच्छे वंश का गुण है, जिससे सब कुछ और जाति स्थिर है। नित्य के अभ्यास से विद्या का ज्ञान बढ़ जाता है ॥८॥

विनेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुता रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥९॥

धन से जिस प्रकार धर्म की रक्षा होती है, उसी प्रकार योगी मनुष्य अपने यम नियम आदि योग से ज्ञान की रक्षा करते हैं। कोमलता से राजा की रक्षा और सुलक्षणा स्त्री से घर की रक्षा होती है ॥९॥

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा ।
अन्यथा वादाच्छान्तलोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा ॥१०॥

वेद के पाण्डित्य में तर्क करने वाला, शास्त्र और आचार के विषय में व्यर्थ विवाद करने वाला, शांत पुरुषों को तंग करने वाला, ये लोग व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०॥

दरिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञानशातिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥११॥

दान दरिद्रता का, शील दुर्गति का, बुद्धि अज्ञान का तथा सद्-भावना भय का नाश करती है ॥११॥

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम् ॥१२॥

काम (विषय भोग) से बढ़कर कोई व्याधि नहीं और मोह से बढ़कर कोई शत्रु नहीं, क्रोध से बढ़कर कोई अग्नि भी नहीं और ज्ञान से बढ़कर सुख किसी में नहीं है ॥१२॥

जन्ममृत्युं हि यात्येको भुनक्त्येक शुभाशुभम् ।
नरके स पतत्येकः एको याति परां गतिम् ॥१३॥

यह यथार्थ है कि मनुष्य अकेला ही मोक्ष पाता है, वह अकेला ही जन्म लेता है और सुख-दुःख भोगकर अकेला ही मर जाता है, और अधिक पाप करने पर वह नरक को भी अकेला ही भोगता है ॥१३॥

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गं तृणं शूरस्य जीवनम् ।
जितात्मनस्तृणं नारी निःस्पृहस्य तृणं जगत् ॥१४॥

रणवीर कभी जीवन से प्रेम नहीं करता, जिसने इन्द्रियों को बस में कर लिया है, उसे स्त्री तुच्छ जान पड़ती है। आत्मा-परमात्मा का ज्ञान होने पर जीव स्वर्ग को तुच्छ जानता है और जिन्हें कोई तृष्णा नहीं है, उनके लिए संसार तृणवत् है ॥१४॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥१५॥

विदेश में विद्या ही मित्र होती है और घर में अपनी गृहिणी ही मित्र रूप है। रोगी के लिए औषध मित्र है और मृत प्राणी को धर्म ही सार रूप है, अर्थात् वही मित्र है ॥१५॥

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम् ।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापि च ॥१६॥

जिस प्रकार समुद्र में वर्षा होना वृथा है और धनी मनुष्य को दान देना वृथा है और दिन में दीपक जलाना वृथा है, उसी प्रकार तृप्त मनुष्य के लिए प्रत्येक प्रकार का भोजन वृथा है ॥१६॥

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम् ।
नास्ति चक्षुःसमं तेजो नास्ति चान्नसमं प्रियम् ॥१७॥

मेघ के जल के समान दूसरा जल पवित्र नहीं होता। आत्मबल

के समान दूसरा बल नहीं। नेत्र के समान दूसरा प्रकाश करने वाला नहीं और अन्न के समान कोई अन्य पदार्थ प्रिय नहीं ॥१७॥

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥१८॥

निर्धन धन चाहते है और पशु-पक्षी बोलना चाहते हैं, मनुष्य स्वर्ग चाहते है और स्वर्गवासी देवगण मुक्ति चाहते हैं ॥१८॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥१९॥

सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है, सत्य से वायु चलती है, सत्य से सूरज तपता है। सारा जगत् भी सत्य के कारण ही टिका है ॥१९॥

चला लक्ष्मी चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे ।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥२०॥

माया (लक्ष्मी) बहुत चंचल होती है, परन्तु जीवन उससे भी अधिक चंचल होता है। इस चर और अचर जगत् में केवल धर्म ही अचल माना गया है ॥२०॥

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः ।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी ॥२१॥

स्त्रियों में मालिन चालाक होती है, पक्षियों में काग धूर्त है और पशुओं में गीदड़ और मनुष्यों में नाई धूर्त होता है ॥२१॥

जनेता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥२२॥

अन्न देने वाला, विद्या पढ़ाने वाला, जन्म देने वाला, भय से रक्षा करने वाला और यज्ञोपवीत देने वाला गुरु ये पांच पिता ही कहे जाते हैं ॥२२॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः ॥२३॥

राजा की स्त्री, मित्र की स्त्री, गुरु की स्त्री, और अपनी सास व माता, इन पाचों को माता कहना चाहिए ॥२३॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

—:०००:—

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

—:o:—

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥१॥

वेद और शास्त्रों को सुनकर धर्म को पहचाना जाता है। इससे कुबुद्धि त्याग कर ज्ञान प्राप्त होता है और वेद शास्त्रों के सुनने से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥१॥

पक्षिणां काक चाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।
मुनीनां पापी चाण्डालः सर्वेषां चैव निन्दकः ॥२॥

पशुओं में कुत्ता, पक्षियों में कौआ और मुनियों में पाप चाण्डाल रूप कहलाते हैं और निन्दक सर्वत्र चाण्डाल है ॥२॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ।
रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥३॥

काँसा राख और तांबा खटाई में डालने से, बाढ़ आने पर नदी और रजस्वला होने के बाद स्त्री शुद्ध हो जाती है ॥३॥

भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन् सम्पूज्यते द्विजः ।
भ्रमन् सम्पूज्यते योगी भ्रमंती स्त्री विनश्यति ॥४॥

घूमने वाले ब्राह्मण, योगी, राजा-महाराजा तो पूजे जाते हैं, परन्तु घूमने वाली स्त्री स्वयं तो नष्ट हो ही जाती है, उसे समाज भी उल्टी-सीधी सुनाता है ॥४॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बांधवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥५॥

वही मित्र है, वही भाई है, वही पण्डित है, जिसके पास धन है। समाज में भी धनवानों को ही मनुष्य समझा जाता है। सम्पूर्ण संसार धनवानों का साथी होता है ॥५॥

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥६॥

जैसी भवितव्यता (होनी) होती है वैसी ही सहायता मिलती है। उस समय बुद्धि भी समयानुसार हो जाती है और सब उपाय स्वयं ही बन जाते हैं ॥६॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥७॥

काल ही जड़ और चेतन का नाश करता है। काल ही संसार का संहार करता है और काल ही सदा जागृत रहता है। काल को अतिक्रमण नहीं किया जा सकता ॥७॥

न च पश्यन्ति जन्मांधाः कामांधो नैव पश्यति ।
मदोन्मत्ता न पश्यन्ति अर्थी दोषं न पश्यति ॥८॥

जन्मान्ध मनुष्य को कुछ नहीं दीखता। स्वार्थी मनुष्य दोषों को नहीं देखते उन्हें केवल अपना उल्लू सीधा चाहिये। मदोन्मत्त और कामान्ध भी कभी कुछ नहीं देखते चाहे कोई प्रसन्न हो या क्रोधित ॥८॥

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥९॥

जीव आप ही कर्म करता और अकेला ही फल भोगता है। यह स्वयं संसार में भ्रमता फिरता है और स्वयं फिर मुक्ति प्राप्त करता है ॥९॥

राज्ञा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ।
भर्त्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा ॥१०॥

अपने राष्ट्र द्वारा हुए पाप को राजा, राजा से बने पाप को राज-पुरोहित और शिष्य से बने पाप को गुरु और स्त्री द्वारा किये गए पाप को पति भोगता है ॥१०॥

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥११॥

ऋण करने वाला पिता और व्यभिचारिणी माता शत्रु के समान है। मूर्ख पुत्र और अधिक सुन्दर स्त्री भी शत्रु के समान होते हैं ॥११॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्स्तब्धमञ्जलिकर्मणा ।
मूर्खं छन्दानुरोधेन याथार्थ्येन च पण्डितम् ॥१२॥

लोभी को धन देकर अपने वश में करना चाहिए। मूर्ख को कहे अनुसार नाच कर खुश रखना चाहिए। घमण्डी मनुष्य को हाथ जोड़कर और पण्डित को सत्य वचन कह कर अपने वश में करना चाहिए ॥१२॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं,
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो,
वरं न दारा न कुदारदाराः ॥१३॥

कुराज्य (बुरे राज्य) से राज्य का न होना अच्छा है। इसी प्रकार बुरे मित्र से मित्र का न होना अच्छा है। अयोग्य शिष्य से भी शिष्य का न होना अच्छा है और कर्कशा स्त्री का पति होने से तो अविवाहित रहना ही अच्छा है ॥१३॥

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखम्,
कुमित्रमित्रेण कुतोऽभिनिर्वृतिः।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे सुखं,
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥१४॥

दुष्ट राजा के राज्य से कभी भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार दुष्ट स्त्री से कभी प्रीति और दुष्ट शिष्य से यश और दुष्ट मित्र से कभी आनन्द-विश्राम नहीं मिल सकता ॥१४॥

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।
वायसात्पंच शिक्षेच्च षट् शुनस्त्रीणि गर्दभात् ॥१५॥

मुर्गे से ४, कव्वे से ५ बातें सीखनी चाहिए तथा सिंह से एक, बगुले से एक, कुत्ते से छह और गधे से तीन बातें सीखना श्रेष्ठ है ॥१५॥

प्रभूतं काममल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥१६॥

कार्य थोड़ा हो या अधिक; उसको पूरा कर देना चाहिए। उसके लिए सन्ध्या और प्रातःकाल का विचार नहीं करना चाहिए। यह शिक्षा सिंह से लेनी चाहिए ॥१६॥

इंद्रियाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नरः ।
देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ॥१७॥

विद्वान् पुरुष को संयमपूर्वक देश, बल और काल को समझ कर बगुले के समान कार्यों को करना चाहिए, जिससे मन में रंज न रहे ॥१७॥

बहूत्थानश्च युद्धश्च संविभागश्च बन्धुषु ।
स्वयमाक्रम्य भोगश्च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ॥१८॥

बहुत प्रातःकाल में जागना, रण के लिए उद्यत रहना, बन्धुओं को उचित विभाग देना और आप युद्ध करके भोग करना, ये चारों बातें कुक्कुट से सीखनी चाहिए ॥१८॥

गूढमैथुनचारित्वं काले काले च संग्रहम् ।
अप्रमत्तमविश्वासं पंच शिक्षेच्च वायसात् ॥१९॥

छिपकर मैथुन करना, छिपकर चलना, किसी पर विश्वास न करना, सदा सावधान रहना, समय-समय पर संग्रह करना, ये पांच बातें हमें कव्वे से सीखनी चाहिए ॥१९॥

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः ।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः ॥२०॥

बहुत खाने की शक्ति होना, गाढ़ निद्रा में रहना, शीघ्र जाग उठना, थोड़े से ही सन्तोष कर लेना, स्वामी की भक्ति करना और शूरवीरता ये छह गुण कुत्ते से सीखने चाहिए ॥२०॥

सुश्रान्तो हि वहेद् भारं शीतोष्णे न च पश्यति ।
सन्तुष्टश्चरते नित्यम् त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥२१॥

अत्यन्त थक जाने पर बोझ को ढोते रहना, कभी गर्मी-सर्दी का ध्यान ही न करना, सदा सन्तोष के साथ विचरण करना ये तीनों गुण गधे से सीखने चाहिए ॥२१॥

य एतान् विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः ।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति ॥२२॥

जो मनुष्य इन बीस गुणों को धारण करेगा वह सदा सब अवस्थाओं और सब कार्यों में विजयी होगा ॥२२॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

—:o:—

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१॥

अपने मन का दुःख और धन का नाश कभी नहीं कहना चाहिए। तथा घर का खोटा चरित्र और अपने आप ठगा जाने पर भी बुद्धिमान को कभी उस पर प्रकाश नहीं डालना चाहिए ॥१॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ।
आहारे व्यवहारे चत्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२॥

धन संग्रह में और अन्न के व्यवहार में, विद्या के प्राप्त करने में, आहार में और व्यवहार में कभी भी लज्जा नहीं करनी चाहिए ॥२॥

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥३॥

संतोष रूपी अमृत से तृप्त शान्त चित्त वालों को जो सुख मिलता है वह धन के लोभ में इधर-उधर घूमने वालों कहां प्राप्त होता है ॥३॥

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः ।
अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च ॥४॥

पति और पत्नी, ब्राह्मण और अग्नि, नौकर और स्वामी, हल

और बैल और दो ब्राह्मण; इनके बीच होकर कभी नहीं चलना चाहिये ॥४॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च ।
नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥५॥

अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ, कुमारी, वृद्ध और बालक इनको पर से नहीं छुना चाहिए ॥५॥

शकटं पञ्चहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम् ।
द्विपं हस्तसहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनम् ॥६॥

गाड़ी को पांच हाथ पर, घोड़े को दस हाथ पर, हाथी को हजार हाथ पर छोड़ना चाहिए और दुर्जन का तो कभी भी साथ नहीं करना चाहिए ॥६॥

हस्ती अंकुशमात्रेण वाजी हस्तेन ताड्यते ।
शृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥७॥

हाथी को केवल अंकुश से, घोड़ों को चाबुक मार कर, सींग वाले जन्तुओं को लाठी से और दुर्जन को तलवार से मारना चाहिए ॥७॥

तुष्यन्ति भोजने विप्राः मयूरा घनगर्जिते ।
साधवः परसम्पत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥८॥

भोजन करने पर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, मेघ के गर्जने पर मयूर प्रसन्न होते हैं और दूसरे का दुःख देख कर दुष्ट प्रसन्न होते हैं, हंसते हैं, तथा दूसरे के धन से सन्त पुरुष प्रसन्न होते हैं ॥८॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्बलम् ।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा ॥९॥

बलवान् शत्रु को उसके अनुकूल व्यवहार करने से, यदि शत्रु दुर्बल हो तो उसके प्रतिकूल व्यवहार करने से जीतना चाहिए और समान शक्ति वाले शत्रु को विनय अथवा बल से जीतना चाहिए ॥९॥

बाहुवीर्यं बलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद् बली ।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमुत्तमम् ॥१०॥

राजा का बाहुवीर्य बल है और ब्राह्मण का बल ब्रह्मज्ञान है, अर्थात् वेद का ज्ञान है। स्त्री में यौवन, मृदु भाषण और सुन्दरता यही उत्तम बल है ॥१०॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥११॥

अत्यन्त सीधे स्वभाव से नहीं रहना चाहिए, क्योंकि वन में जाकर देखो जितने सीधे वृक्ष हैं काटे जाते हैं और जितने टेढ़े हैं वे खड़े रहते हैं ॥११॥

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसा—
तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति ।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यम्,
पुनस्त्यजन्तः पुनराश्रयन्तः ॥१२॥

तालाब के हंस के समान स्वार्थी बनकर नहीं रहना चाहिए। जिस तरह कि जब तक तालाब में पानी रहता है हंस वहीं रहता है और पानी सूखने पर हंस वहां से उड़ जाता है ॥१२॥

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ॥१३॥

संचित धन को व्यय करना ही उसकी रक्षा है। जैसे तड़ाग के भीतर से जल का निकलना सार्थक है ॥१३॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च जीवति ॥१४॥

जिसके पास धन रहता है उसीके सब मित्र और भाई-बंधु होते हैं। जिसके पास धन है वही पुरुष गिना जाता है और उसीका जीवन सार्थक है ॥१४॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके,
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे ।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी,
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणञ्च ॥१५॥

स्वर्ग के रहने वाले मनुष्यों की इस संसार में तीन प्रकार से जांच की जाती है। देवता और ब्राह्मण को तृप्त करना, मीठा वचन और दान की इच्छा ॥१५॥

अत्यन्तकोपं कटुका च वाणी,
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् ।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा,
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१६॥

अत्यन्त क्रोध, कटु वचन, दरिद्रता, नीचों का संग, अपने जनों से बैर लगाकर कुलहीनों की सेवा, ये सब चिह्न नरक वासियों की देह में रहते हैं ॥१६॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं
लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम् ।
जम्बुकालयगते च प्राप्यते
वत्स-पुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥१७॥

यदि सिंह की मांद के पास कोई मनुष्य जाता है तो हाथी के गाल की हड्डी का मोती पाता है और यदि गीदड़ की मांद के पास जाता है तो बछड़े की पूंछ और गधे के चमड़े का टुकड़ा पाता है ॥१७॥

शुनःपुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना ।
न गुह्यगोपने शक्तः न च दंशनिवारणे ॥१८॥

कुत्ते की पूंछ के समान विद्या बिना जीना व्यर्थ है, क्योंकि कुत्ते की पूंछ न गोप्य को ही ढाँप सकती है और न मच्छर आदि जीवों को ही उड़ा सकती है ॥१८॥

वाचां शौचं मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दया शौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥१९॥

वचन की शुद्धि, मन की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, सब जीवों पर दया और पवित्रता, ये परमार्थी पुरुषों की शुद्धि है ॥१९॥

पुष्पे गन्धस्तिले तैलं काष्ठे वह्निः पयोघृतम् ।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः ॥२०॥

जैसे फूल में गन्ध, तिल में तेल, काठ में आग, दूध में घी, ईख में गुड़ रहते हैं वैसे ही देह में आत्मा है। विचार कर देखो ॥२०॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

—:o:—

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥१॥

नीच पुरुष धन चाहते हैं, मध्यम धन और मान दोनों चाहते हैं और उत्तम केवल मान ही चाहते, क्योंकि मान ही महात्माओं और गुणियों का धन है ॥१॥

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्तव्या स्नानदानादिका क्रियाः ॥२॥

गन्ना जल, औषध दूध, मूल, फल, पान इन वस्तुओं का भक्षण कर लेने पर भी स्नान दान आदि क्रिया करनी चाहिए ॥२॥

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥३॥

जो जैसा अन्न सदा खाता है उसकी वैसी ही सन्तति होती है । जिस प्रकार दीपक अन्धकार को तो नष्ट कर देता है परन्तु काजल को पैदा कर देता है ॥३॥

वित्तान्देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित्,
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा ॥
जीवान् स्थावरजंगमांश्च सकलान् संजीव्य भूमण्डलम्,
भूयः पश्य तदेव कोटिगुणितं गच्छत्तमम्भोनिधिम् ॥४॥

हे मतिमान् भगवान् ! गुणियों को छोड़ कर धन किसी और को न दो। समुद्र का जल बादल बन जाता है और वह स्वच्छ और निर्मल बन जाता है और वह सब ही जगह बरस कर सब का सुखी करता है और फिर कई गुणा बढ़ कर वापस सागर में चला जाता है ॥४॥

चाण्डालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥५॥

संसार में सहस्रचाण्डालों के तुल्य एक यवन होता है और यवन से नीच दूसरा कोई नहीं है ऐसा विद्वानों का कथन है ॥५॥

तैलाभ्यंगे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि ।
तावद् भवति चाण्डालो यावत्स्नानं समाचरेत् ॥६॥

चिता का धुंआ लग जाने पर, स्त्री प्रसङ्ग करने पर, तेल लग जाने पर बाल बनाने पर, तब तक चाण्डाल ही बना रहता है जब तक कि स्नान न कर चुके ॥६॥

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ॥७॥

अजीर्ण होने पर जल औषध है। पच जाने पर जल बल देता है, भोजन के समय पानी अमृत के समान है और भोजन के अन्त में विष का फल देता है ॥७॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः ।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥८॥

बिना स्वामी के सेना और स्त्री, और ज्ञान बिना क्रिया नष्ट हो जाती है और मनुष्य अज्ञान के कारण नष्ट हो जाता है ॥८॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम् ।
भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥९॥

बुढ़ापे की अवस्था हो और स्त्री मर जाये, अपना धन भाई के हाथ में चला जाये और भोजन के लिए दूसरों का मुंह देखना पड़े। यह तीन बातें मनुष्य के लिए मौत के समान दुःख को देने वाली हैं ॥९॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया ।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१०॥

अग्निहोत्र के विना वेद पढ़ना व्यर्थ है। दान के विदा यज्ञादिक क्रिया नहीं बनती, श्रद्धा भक्ति के विना कोई सिद्धि नहीं होती। इसलिए प्रेम ही सबका कारण है ॥१०॥

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेवनम् ।
श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य विष्णोः प्रसादतः ॥११॥

धातु, काष्ठ और पाषाण का भी भाव और श्रद्धा से पूजन करने से जैसी सिद्धि होती है भगवत्कृपा से भी वैसी सिद्धि भक्ति के द्वारा होती है ॥११॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये ।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१२॥

देवता पत्थर और मिट्टी में नहीं मिलते। न वे काठ में ही मिलते हैं। निश्चय ही यह देवता, भाव में विद्यमान हैं। इस हेतु प्रेम भाव ही सबका कारण है ॥१२॥

शांतितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम् ।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दया परः ॥१३॥

शान्ति के समान दूसरा तप नहीं है, न सन्तोष से बड़ा सुख है। तृष्णा जैसी दूसरी व्याधि नहीं और दया के समान कोई धर्म नहीं है ॥१३॥

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुहा धेनुः सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥१४॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय के समान है और सन्तोष नन्दन वन के समान है ॥१४॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम्।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥१५॥

गुण से रूप शोभायमान लगता है, सिद्धि से विद्या शोभायमान लगती है, कुलीन को शीलता शोभा देती है और भोग धन का आभूषण कहलाता है, अर्थात् भोग के बिना धन व्यर्थ है ॥१५॥

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम्।
असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हतं धनम् ॥१६॥

गुण के बिना रूप और शील कुल हीन समझे जाते हैं। सिद्धि के बिना विद्या वृथा है और बिना भोग के धन व्यर्थ ॥१६॥

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता।
शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तुष्टो ब्राह्मणः शुचिः ॥१७॥

पतिव्रता स्त्री पवित्र है, सन्तुष्ट ब्राह्मण पवित्र होता है। कल्याण करने वाला राजा पवित्र होता है और भूमिगत जन शुद्ध होता है॥१७॥

असन्तुष्टा द्विजः नष्टाः सन्तुष्टाश्च महीभुजः ।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलांगनाः ॥१८॥

सन्तोषी राजा नष्ट होता है और असन्तोषी ब्राह्मण नष्ट होते हैं। शर्मीली वेश्या नष्ट होती है और बेशर्म कुलवधू नष्ट हो जाती है ॥१८॥

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम् ।
दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि सुपूज्यते ॥१९॥

बड़ा कुल भी विद्याहीन होने पर किसी काम का नहीं है। जहां विद्वान् चतुर मनुष्य पैदा होते हैं वह छोटा कुल होने पर भी पूज्य है ॥१९॥

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् सर्वत्र गौरवम् ।
विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र गौरवम् ॥२०॥

संसार में विद्या लाभ देती है और आदर और मान कराती है, विद्या से सभी जगह विद्वान् लोग सदा यश और प्रशंसा पाते हैं ॥२०॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥२१॥

सुन्दरता तथा यौवन से युक्त हो, अच्छा श्रेष्ठ कुल हो परन्तु यदि वह मनुष्य विद्याहीन हो तो ये सब वस्तुएं भी उसे उसी प्रकार शोभा नहीं देतीं जैसे गन्ध हीन टेसू के फूल की सुन्दरता ॥२१॥

मांसभक्षकैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्ताऽस्ति मेदिनी ॥२२॥

मांसाहारी और निरक्षर मूर्ख और मदिरा पीने वाले पुरुषाकार पशुओं में भार से पृथ्वी पीड़ित है ॥२२॥

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मंत्रहीनश्च ऋत्विजम् ।

यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥२३

यज्ञ के समान दूसरा प्रबल शत्रु नहीं है, क्योंकि मन्त्रहीन यज्ञ यज्ञकर्ता को दानहीन यज्ञ यजमान को और अन्नहीन यज्ञ राज्य को नष्ट कर देता है ॥२३॥

*** इति अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ***

अथ नवमोऽध्यायः ॥९॥

—:०:—

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवं दया शौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥१॥

मोक्ष पाने के लिए विषयों को विष के समान समझ करके छोड़ दो तथा क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता और सत्य को अमृत के समान पियो ॥१॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः
त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदर-सर्पवत् ॥२॥

जो दुष्ट मनुष्य आपस में कटुवचन बोलकर गुप्त बातों को खोलते हैं वे संसार रूपी बांबी में पड़कर सांप के समान नष्ट हो जाते हैं ॥२॥

गन्धं सुवर्णे फल मक्षु-दण्डे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान् धनी भूपतिर्दीर्घजीवी,
धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥३॥

ब्रह्मा ने चन्दन के वृक्ष में पुष्प नहीं लगाये, ऊख में फल नहीं लगाये, विद्वान् को धन नहीं दिया, राजाओं को अल्पायु बनाया, और सोने में सुगन्ध नहीं दी । इससे यह निश्चय है कि इनको पहले कोई बुद्धि देने वाला नहीं था ॥३॥

सर्वौषधीष्वमृतं प्रधानं
सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम् ।

सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥४॥

सब सुखों से बढ़कर सुख भोजन है, ओषधियों में अमृत मुख्य है। सब इन्द्रियों में आंख श्रेष्ठ है और सब अंगों में सिर मुख्य है ॥५॥

दूतो न सञ्चरति खे न चलेच्च वार्ता,
पूर्वं न जल्पितमिदं न च संगमोऽस्ति ।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं,
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥५॥

दूत आकाश में नहीं जाता है, न वहां बातचीत ही चल सकती है, न पहले से यह कह दिया जाता है, फिर जो ब्राह्मणसूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण जानता है वह विद्वान क्यों नहीं हो सकता ॥५॥

विद्यार्थी सेवकः पांथः क्षुधार्तो भयकातरः ।
भाण्डारी प्रतिहारश्च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत् ॥६॥

सेवक, पथिक, भण्डारपति, द्वाररक्षक, भूख से पीड़ित, भय से व्यग्र और विद्यार्थी को सोता हुआ देखकर जगा देना चाहिए ॥६॥

अहिं नृपञ्च शार्दूलं वृकं च बालकं तथा ।
परश्वानञ्च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥७॥

साँप, भेड़िया, शेर, राजा, बालक, मूर्ख और दूसरों का कुत्ता, इन सातों को नहीं जगाना चाहिए ॥७॥

अर्थार्थीनाश्च ये वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः ।
ते द्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥८॥

जो लोग शूद्रों का अन्न खाते हैं और धन लेने को ही वेद पढ़ते हैं,

वे ब्राह्मण विषहीन सर्प के समान कभी न कुछ कर सकते हैं और न उन्हें ख्याति ही प्राप्त होती है ॥८॥

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति रुष्टः किं करिष्यति ॥९॥

जिस के क्रोध करने पर भय नहीं, सन्तुष्ट होने पर मन का लाभ नहीं हो, जो मनुष्य दण्ड नहीं दे सके वह क्रुद्ध हो कर भी क्या करेगा ॥९॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्या महती फणा ।
विषमस्तु न चाप्यस्तु फणाटोपो भयंकरः ॥१०॥

विषहीन सांप को भी फन फैलाना चाहिए, विष हो अथवा न हो इसको कोई जानता नहीं । परन्तु वह दूसरे मनुष्यों को भयभीत कर देता है ॥१०॥

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः ।
रात्रौ चौरप्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम् ॥११॥

प्रातः काल में जुआरियों (पाण्डवों) की कथा अर्थात् महाभारत की कथा जिसमें जुए की हानि का पता लगता है और दोपहर में स्त्री प्रसंग और स्त्रीवियोग (राम सीता का वर्णन) की कथा अर्थात् रामायण जिससे स्त्री के वश न होने की शिक्षा मिलती है, और रात को चोर प्रसंग अर्थात् भागवत पढ़ते-पढ़ते विद्वान् अपना समय बिताते हैं ॥११॥

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्ताद् घृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥१२॥

अपने हाथ से गूंथी हुई माला, अपने हाथ से घिसा हुआ चन्दन और अपने हाथ से लिखा हुआ स्तोत्र इन्द्र की लक्ष्मी को भी हर लेता है ॥१२॥

इक्षुदण्डस्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम च मेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्द्धनम् ॥१३॥

ऊख, शूद्र, तिल, पान, कनक, स्त्री, चन्दन और दही इनका मलना गुण बढ़ाने वाला है ॥१३॥

दरिद्रता धीरतया विराजते,
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।
कदन्नता चोष्णतया विराजते,
कुरूपता शीलयुता विराजते ॥१४॥

दरिद्रता धीरता से शोभा पाती है। कुवस्त्र स्वच्छता से अच्छा लगता है, कुअन्न उष्णता से अच्छा लगता है और कुरूपता सुशीलता से शोभा देती है ॥१४॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥१०॥

—:०:—

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः ।
विद्यारत्नेन यो हीनः स हीनः सर्ववस्तुषु ॥१॥

जो कवि निश्चय से युक्त है वह भले ही निर्धन हो परन्तु फिर भी उसके लिए दीन कहना उचित न होगा। विद्वान् कभी भी हीन नहीं होते। बल्कि जो विद्याहीन हैं वही वस्तुओं से हीन कहे जाते हैं ॥१॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥२॥

आंख से देखकर पांव रखना चाहिए, कपड़े से छान कर जल पीना चाहिए। शास्त्रसम्मत वचन बोलना चाहिए और मन से शुद्ध कर अर्थात् विचार कर कार्य करना चाहिए ॥२॥

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ॥३॥

यदि सुख चाहते हो तो विद्या को छोड़ दो, और यदि विद्या चाहते हो तो सुख को छोड़ दो, क्योंकि सुख चाहने वालों को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती और विद्या चाहने वालों को सुख कहां ? अर्थात् विद्या और सुख एक साथ नहीं मिल सकते ॥३॥

कवयः किन्न पश्यन्ति किन्न कुर्वन्ति योषितः ।
मद्यपाः किन्न न जल्पन्ति किन्न खादन्ति वायसाः ॥४॥

स्त्रियां क्या नहीं कर सकती हैं ? कवि लोग क्या नहीं देखते हैं ? शराबी क्या नहीं बक देते हैं और कागा क्या नहीं खा लेता है ॥४॥

रङ्कं करोति राजानं राजानं रङ्कमेव च ।
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः ॥५॥

विधाता राजा को निर्धन और निर्धन को धनवान् बना देता है। राजा को भिखारी और भिखारी को राजा बना देता है ॥५॥

लुब्धानां याचकः शत्रु मूर्खाणां बोधको रिपुः ।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रु राज्ञां चन्द्रमा रिपुः ॥६॥

लोभी मनुष्य का भिक्षुक शत्रु है और मूर्ख को शिक्षा देने वाला शत्रु है, व्यभिचारिणी स्त्री को उसका पति शत्रु है और चोरों का चन्द्रमा शत्रु है ॥६॥

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥७॥

जिन मनुष्यों में न शील है, न तप है, न दान, न भक्ति, न गुण है न धर्म और न विद्या ही है; वे मनुष्य रूप में पृथ्वी पर भार स्वरूप विचरते हैं ॥७॥

अन्तःसार बहीनानामुपदेशो न जायते
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥८॥

जो मनुष्य गम्भीरता से हीन होते हैं वे कभी शिक्षा नहीं ले सकते। जिस प्रकार कि मलयाचल पर्वत का बांस चन्दन की सुगन्ध से चन्दन नहीं बन जाता ॥८॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥९॥

मनुष्य का शास्त्र भी कुछ उपकार नहीं कर सकते, जिस प्रकार कि दर्पण अन्धे मनुष्यों के लिए व्यर्थ है। वह अपनी चमक से उसकी आंखों का अन्धेरा नहीं मिटा सकता ॥९॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो न हि भूतले ।
अपानं शतधा धौतं श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥१०॥

ऐसी कोई भी युक्ति नहीं है जिससे कि दुर्जन मनुष्य सज्जन हो सकते हों। क्योंकि मलेन्द्रिय को चाहे सैंकड़ों बार धुलवाया जाये, वह कभी भी अच्छी इन्द्रिय नहीं बन सकती है ॥१०॥

आप्तद्वेषाद् भवेन्मृत्युः परदोषाद्धनक्षयः ।
राजद्वेषाद् भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥११॥

राजा से द्वेष बढ़ाने पर स्वयं नष्ट होता है। सत्यवक्ता से द्वेष बढ़ाने पर मृत्यु होती है और ब्राह्मण से द्वेष होने पर सब कल का नाश होता है और परस्पर के विरोध से धन का नाश होता है ॥११॥

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयं पक्वफलाम्बुसेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥१२॥

धनहीन होकर भाइयों के बीच में जीना श्रेय नहीं है। इससे तो बाघ और बड़े-बड़े हाथियों वाले वन में वृक्ष के नीचे पके फल

खाना, जल पीना, छाल आदि ओढ़-पहन कर घास पर सोना ही अच्छा है ॥१२॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥१३॥

ब्राह्मण वृक्ष है और उसकी जड़ संध्या है, वेद शाखा है। धर्म और कर्म ये पत्ते हैं। इसी से सदा जड़ की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि उसके कट जाने से फिर कुछ नहीं रह जाता है ॥१३॥

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः ।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१४॥

जिसकी माता लक्ष्मी है और पिता विष्णु हैं और विष्णु के भक्त भाई बन्धु उसको तीनों लोक अपने देश के समान हैं ॥१४॥

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णा विहंगमाः ।
प्रभाते दिक्षु गच्छन्ति तत्र का परिदेवना ॥१५॥

अनेक प्रकार के पक्षी एक वृक्ष पर बैठते हैं और प्रभात में फिर दशों दिशाओं में उड़ जाते हैं। इसमें शोक करने की क्या बात है ॥१५॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
वने सिंहो मदोन्मत्तो जम्बुकेन निपातितः ॥१६॥

मूर्ख को बल नहीं होता है क्योंकि जिसमें बुद्धि है उसी में बल है। वन में मद से पागल सिंह स्यार द्वारा मारा गया ॥१६॥

का चिंता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते,
नो चेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निःसरेत् ।

इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं,
त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥१७॥

मुझे जीवन की क्या चिन्ता है यदि विष्णु जगत् का पालन कर्ता कहा जाता है। यदि ऐसा नहीं है तो बच्चे के लिए माता के स्तन से दूध कैसे निकलता है ? यह बार-बार विचार कर हे कृष्ण ! हे विष्णु ! सदा केवल तुम्हारे चरणों की सेवा में मेरा समय व्यतीत होता है ॥१७॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धि
स्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम् ।
यथा सुराणामपि चेक्षुरसे
स्वर्गांगनानामधरासवे रुचिः ॥१८॥

महर्षि चाणक्य नीति शास्त्र के धुरन्धर विद्वान कहते हैं कि यद्यपि मैं सुरभाषा (संस्कृत) में विशेष बुद्धि रखता हूं तो भी मैं दूसरी भाषाओं का लोभी हूं। जैसे अमृत पीने पर भी देवताओं की इच्छा स्वर्ग की स्त्रियों के ओष्ठ के आसव (मद्य विशेष) में रहती है ॥१८॥

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९॥

अन्न से आठ गुणा गुण पिष्टी में है। पिष्टी से दस गुणा दूध में है, दूध से आठ गुणा मांस में है और मांस से दस गुणा घी में है ॥१९॥

शाकेन रोगा वर्धन्ते पयसा वर्धते तनुः ।
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते ॥२०॥

शरीर को दूध बढ़ाता है और शाक खाने से रोग बढ़ते हैं। मांस खाने से पेशियां और घी खाने से वीर्य बढ़ता है ॥२०॥

इति दशमोऽध्यायः ॥१०॥

॥अथ एकादशोऽध्यायः ॥११॥

—:०००:—

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः ॥१॥

मीठी बोली, उचित का ज्ञान, उदारता और धीरता ये अभ्यास से नहीं मिलते। ये स्वाभाविक गुण हैं ॥१॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ।
स्वयमेव प्रलयं याति यथा राज्यमधर्मतः ॥२॥

जो अपनी जाति या श्रेणी को छोड़ कर पराई जाति का आश्रय लेता है वह आप ही नष्ट हो जाता है जैसे पाप से राज्य नष्ट हो जाता है ॥२॥

हस्ती स्थूलतनुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशः,
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रं तमः,
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥३॥

अत्यन्त स्थूल शरीर होने पर हाथी अंकुश के वश में होता है, क्या अंकुश हाथी जितना होता है ? दीपक विस्तृत अन्धकार का नाश कर देता है। क्या वह अन्धकार के समान विस्तृत होता है। बड़े-बड़े पर्वत वज्र (आकाश से गिरने वाली बिजली) से फट जाते हैं, क्या वह बिजली पहाड़ों जितनी होती है ? जो तेजोमय (शक्तिशाली) है वही बलवान् होता है, मोटेपन अर्थात् बाहरी आकार का कोई भेद नहीं ॥३॥

कलौ दश सहस्राणि हरिस्त्यज दिनीम् ।
तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवताः ॥४॥

दस हजार वर्ष कलियुग बीतने पर सुर नदी (गंगा जी) का जल पृथ्वी को छोड़ देता है और इसका भी आधा होने पर ग्राम देवता ग्राम को छोड़ देता है ॥४॥

गृहासक्तस्य नो विद्या न दया मांसभोजिनः ।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं न स्त्रैणस्य पवित्रता ॥५॥

स्त्री प्रसंग करने वाला कभी शुद्ध नहीं होता, घर रहने से विद्या नहीं आती, मांस खाने वाले को दया नहीं होती और लोभी कभी सत्यवक्ता नहीं होता ॥५॥

न दुर्जनः साधुदशामुपैति,
बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः ।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन,
न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥६॥

दुर्जन को चाहे कितना ही कोई पढ़ावे परन्तु वह दुर्जनता को नहीं छोड़ता । चाहे नीम के वृक्ष को दूध और घी से सींचा जावे परन्तु फिर भी उसमें मिठास नहीं आती ॥६॥

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि ।
न शुध्यति यथा भाण्डं सुराया दाहितं च तत् ॥७॥

दुष्ट मनुष्य चाहे सैंकड़ों बार तीर्थ स्नान कर ले परन्तु वह फिर भी पवित्र नहीं होता । जैसे मदिरा पात्र अग्नि से जलाया जाने पर भी पवित्र नहीं होता ॥७॥

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं
सतंत सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम् ।

यथा किराती करिकुम्भलब्धां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुंजाम् ॥८॥

जो व्यक्ति जिसके गुणों को नहीं जानता वह सदा ही उसकी निन्दा किया करता है। जैसे भीलनी हाथी के मस्तक से प्राप्त मोती को छोड़कर गुञ्जा ही पहनती है ॥८॥

ये तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते।
युगकोटिसहस्रं तैः स्वर्गलोके महीयते ॥९॥

संसार में जो मनुष्य पूरे सम्वत् भर सदा मौन होकर भोजन करते हैं वे कोटि युग तक स्वर्ग में पूजे जाते हैं ॥९॥

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं शृंगार कौतुके।
अतिनिद्राऽतिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥१०॥

विद्यार्थी को चाहिए, कि काम, क्रोध, लोभ, अति निद्रा, अति सेवा, स्वाद, खेल 'टोन आदि का झमेला करना' और शृङ्गार, इन आठों को छोड़ दे ॥१०॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतिः सदा।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥११॥

बिन जोती हुई भूमि में उत्पन्न फल, मूल खाकर सदा जिसको वनवास में अनुराग हो और प्रतिदिन श्राद्ध करता हो वह ब्राह्मण ऋषि कहा जाता है ॥११॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा।
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते ॥१२॥

एक बार भोजन से सन्तुष्ट होकर छः कर्मों में सदा तत्पर हो और ऋतु समय में स्त्री प्रसंग करने वाला हो, वह ब्राह्मण द्विज कहा जाता है ॥१२॥

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः ।
वाणिज्यकृषिकर्ता यः स विप्रो वैश्य उच्यते ॥१३॥

जो व्यक्ति पशुओं का पालन करता हो, व्यापार और खेती करने वाला हो और संसार के कर्मों में लीन हो, वह ब्राह्मण वैश्य ही कहलावेगा ॥१३॥

लाक्षादितैलनीलानां कौसुम्भमधुसर्पिषाम् ।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥१४॥

लाक्षादि तेल, नील, कुसुम, घी, मधु, मदिरा और मांस बेचने वाला ब्राह्मण शूद्र के समान होता है ॥१४॥

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥१५॥

पाखण्डी, दूसरे की उन्नति देखकर जलने वाला, छली अन्दर से कड़वा, बाहर मीठा, लबार, दूसरे के काम नष्ट करके अपना काम बनाने वाला ब्राह्मण बिलाव कहलाता है ॥१५॥

वापी कूपतडागानाम् आरामसुरवेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराशंकः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥१६॥

बावली, वाटिका, मन्दिर, कुआं और तालाब इन सबको तोड़ने में जो निडर हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहा जाता है ॥१६॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्षणम् ।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥१७॥

देवता का द्रव्य, गुरु का द्रव्य जो पुरुष हरता है, पराई स्त्री से जो प्रसंग करता है और सब प्राणियों से निर्वाह करने वाला वह प्रिय चाण्डाल होता है ॥१७॥

देयं भोज्यधनं सदा सुकृतिभिर्नो संचयस्तस्य वै,
श्री कर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्संचितम्,
निर्वेदादिति नैजपादयुगलं घर्षत्यहो मक्षिकाः ॥१८॥

सज्जन पुरुषों का धन दान देने के लिए होता है। जैसे कर्ण, विक्रमादित्य और बलि ने दान देकर ही इतनी ख्याति प्राप्त की। दान भोग से रहित बहुत काल से संचित हम लोगों का मधु नष्ट हो गया। आश्चर्य है कि मधु मक्खियां मधु के नाश होने से दोनों चरणों को घिसती हैं अर्थात् पश्चाताप करती हैं ॥१८॥

* इत्येकादशोऽध्यायः *

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

—:०:—

आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे,
साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥१॥

यदि किसी घर में बुद्धिमान् पुत्र हो, प्रियभाषिणी स्त्री हो, धन हो अतिथि और साधु की सेवा, उपासना होती हो, शिव की भक्ति हो, अपनी स्त्री से सन्तोष हो, नौकर आज्ञाकारी हो, मिष्टान्न व ग्रहण करने योग्य अन्न पान हो, वह घर बहुत ही प्रशंसनीय और धन्य है ॥१॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च,
यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम् ।
अनन्तपारं समुपैति राजन्,
यदीयते तल्लभते द्विजेभ्यः ॥२॥

जो दयालु पुरुष दुखी ब्राह्मण को दान देता है वह चाहे थोड़ा हो या अधिक उससे मात्रा में वह ब्राह्मण द्वारा ही उसे मिल जाता है ॥२॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रु जने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता,
इत्थं ये पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥३॥

अपने जन से प्रसन्नता, दूसरों से दया, दुष्टों के साथ दुष्टता, साधुओं से प्रीति, क्रूर नीचों से अहंभाव, विद्वानों के प्रति सरलता, शत्रु के प्रति

वीरता, गुरुओं से क्षमा और स्त्रियों से छल का व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार से जो नर व्यवहार-कुशल हैं वे ही संसार में आदर पाते हैं ॥३॥

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ,
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो,
रे रे जम्बुक मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ॥४॥

जिसने कभी पांवों से चलकर तीर्थयात्रा नहीं की है, कानों से वेद नहीं सुने हैं, हाथों से दान नहीं किया, नेत्रों से साधुजनों के दर्शन नहीं किये हैं। अहंकार से सिर ऊंचा करके अधर्म से पेट भरता है वह भी पशु के समान जीवन बिताता है। उसे इस निन्दनीय शरीर को छोड़ देना ही उत्तम है ॥४॥

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां,
येषां श्रीराधिकायाः प्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा।
येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथासादरौ नैव कर्णौ,
धिक्तान्धिक् तान्धिगेतान् कथयति सततं कीर्तनस्थो मृदंगः ॥५॥

जिस मनुष्य की श्री कृष्ण जी के चरणों में भक्ति नहीं है, जिसकी जिह्वा राधा जी के गुणों का वर्णन करने में रस नहीं लेती, जिसके कानों ने श्री कृष्ण जी की ललित कथाओं को नहीं सुना, उसको धिक्कार है ऐसा मृदङ्ग (तबला) उसके लिए कहता है ॥५॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं,
नोलूकोऽप्यवलोकने यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।

धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं,
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥६॥

यदि करीर के वृक्ष में पत्ते न हों तो इसमें बसन्त का क्या दोष है, उल्लू को दिन में नहीं दीखता तो इसमें सूर्य का क्या दोष है, यदि वर्षा की बूंद पपीहा के मुख में नहीं जाती इसमें मेघ का क्या अपराध है ? भला ब्रह्म के लिखे को कौन मेट सकता है ॥६॥

सत्संगाद् भवति हि साधुता खलानां,
साधूनां न हि खलसंगतः खलत्वम् ।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते,
मृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति ॥७॥

संगति और कुसंगति में कुछ थोड़ा भेद नहीं है । अच्छी संगति से दुष्टों में भी सज्जनता आती है परन्तु कुसंगति से साधुओं में दुष्टता नहीं आती । जैसे मिट्टी पुष्प से सुगन्धि लेती है परन्तु फूल मिट्टी से दुगन्ध नहीं लेता ॥७॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलति तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥८॥

साधुओं का दर्शन ही पुण्य है, इसमें तीर्थों से भी अधिक आनन्द आता है, क्योंकि तीर्थ तो समय आने पर ही फल देते हैं परन्तु साधुओं का दर्शन और संगति तुरन्त ही फल देती है ॥८॥

विप्रास्मिन्नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः,
को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि ।
को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः,
कस्माज्जीवसि हे सखे ! विषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम् ॥९॥

हे ब्राह्मण कहो कि इस नगर में बड़ा कौन है ? उत्तर—ताड़ के वृक्ष ही बड़े हैं। दाता कौन है ? धोबी ही दानी है जो प्रातः वस्त्र लेता है और रात को लौटा देता है। कौन चतुर हैं। दूसरे की स्त्री और धन को हरने में सभी चतुर हैं फिर हे सखे ! तुम कैसे जीते हो ? मित्र जैसे विष का कीड़ा विष नहीं मरता उसी प्रकार मैं भी विषकृमि-न्याय से जीवित हूं ॥९॥

न विप्रपादोदक-कर्दमानि,

न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।

स्वाहास्वधाकार-विवर्जितानि,

श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥१०॥

जिन घरों में ब्राह्मण के चरन जल से कीचड़ न हुआ हो न वेद का पाठ होता हो और जो घर स्वाहा, स्वधा की ध्वनि से वर्जित हैं वे मरघट के समान हैं ॥१०॥

सत्यं माता, पिता ज्ञानं, धर्मो भ्राता, दया सखा ।

शान्तिः पत्नी, क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥११॥

सत्य मेरी माता, ज्ञान मेरा पिता दया मेरा मित्र, धर्म मेरा भाई, शान्ति मेरी स्त्री और क्षमा मेरा पुत्र, ये छह ही मेरे बन्धु हैं ॥११॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।

नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१२॥

सम्पत्ति चिरस्थायी नहीं है क्योंकि माया (लक्ष्मी) को सब चंचल कहते हैं। देह विनाशी है, मृत्यु सदा निकट ही रहती है। इसीलिए धर्म को बड़ा मान कर उसका संचय करना चाहिए ॥१२॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः ।
पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृष्ण ! रणोत्सवः ॥१३॥

ब्राह्मणों का निमन्त्रण उत्सव है, नवीन घास गौवों का उत्सव है, स्त्री के लिए पति उत्सव है और मुझको रण ही उत्सव है, इसी से मेरा मन आनन्दित होता है ॥१३॥

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥१४॥

पराये धन को पत्थर समान, पर स्त्री को माता के समान और सब जीवों को अपने समान जो मनुष्य देखता है और समझता है वही मनुष्य चतुर है, पण्डित है ॥१४॥

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता,
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता ।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता,
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति वै राघव ॥१५॥

धर्म में तत्परता, दान में उत्सुकता, आचरण में पवित्रता, मुख में मधुरता, चित्त में गम्भीरता, गुणों में रसिकता, गुरु के प्रति नम्रता, रूप में सुन्दरता, शिव भक्ति, शास्त्रों का विशेष ज्ञान, मित्र में निश्चलता, हे राम ! ये गुण तुम्हीं में हैं ॥१५॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः,
सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारां निधिः ।
कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौः,
नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते ॥१६॥

हे श्री रामचन्द्रजी ! आप किसके समान हो जो आपकी उपमा दी जा सके। कामधेनु जो पशु होने के नाते आप से बहुत ही हीन है, कल्प वृक्ष काठ है, सुमेरु पत्थर का पर्वत है, चिन्तामणि भी पत्थर है, कामदेव अशरीरी है, समुद्र खारा है, चन्द्रमा की किरणें क्षीण होने वाली है और सूर्य की किरणें अति उष्ण हैं ॥१६॥

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥१७॥

परदेश में विद्या मित्र है, घर में स्त्री मित्र है, रोगी को औषध ही मित्र है, और धर्म जगत् का सार है और मरने पर मित्र है ॥१७॥

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् ।
असत्यं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत् कैतवम् ॥१८॥

शिष्टाचार की शिक्षा राजा के पुत्रों से, प्रिय वचन पण्डितों से, असत्य वचन जुआरियों से और छल, कपट स्त्रियों से सीखना चाहिए ॥१८॥

अनालोक्य व्ययं कर्ता अनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥१९॥

बिना खर्च करने वाला, बिना सहायक लड़ने वाला और सब जाति की स्त्रियों से भोग करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥१९॥

नाहारं चिन्तयेत् प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत् ।
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥२०॥

बुद्धिमान को आहार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, एक धर्म को ही सोचना चाहिए, क्योंकि आहार मनुष्य के जन्म के साथ ही उत्पन्न होता है ॥२०॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२१॥

अन्न और धन के प्रयोग में कभी भी लज्जा नहीं करना चाहिए, विद्या के संग्रह में भी लज्जा को छोड़ना चाहिए तथा आहार (भोजन) और व्यवहार में जो पुरुष लज्जा नहीं करता वही सुखी रहता है ॥२१॥

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटाः ।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥२२॥

लगातार एक-एक बूंद से घड़ा भर जाता है और फिर एक-एक बूंद से घट भी सकता है, इसी प्रकार विद्या धन और धर्म भी थोड़ा-थोड़ा करके ही बढ़ते हैं और वैसे ही घट भी जाते हैं ॥२२॥

वयसा परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः ।
सुपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥२३॥

आयु में बड़ा होने पर भी दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं त्यागता जिस प्रकार इन्द्रवारुण (एक फल) बहुत पक जाने पर भी मीठा नहीं निकलता ॥२३॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥

—:०:—

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

—:०:—

मुहूर्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा ।
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥१॥

सन्त मनुष्य जो शुभ कर्म करते हैं दो पल के लिए भी उनका जीना श्रेष्ठ है। इस लोक और परलोक विरोधी दुष्टकर्म करने वाले का कल्प भर जीना भी दुःखदायी है ॥१॥

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् ।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्त्तन्ते विचक्षणाः ॥२॥

किसी बात के बीत जाने पर उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। विद्वान् उपस्थित समय में प्रवृत्त होते है। भविष्य की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वे ही मनुष्य चतुर हैं जो ऐसा करते हैं ॥२॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा पिता ।
ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः ॥३॥

देवता, पिता, उत्तम पुरुष, सन्त ये स्वभाव से, बन्धु लोग खान पान से तथा पण्डित लोग प्रिय वचन से सन्तुष्ट होते हैं ॥३॥

अहो बत चित्राणि चरितानि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥४॥

बड़े आदमियों की बड़ी ही बात होती है। वे लक्ष्मी को तिनके

के समान समझते हैं और यदि वह प्राप्त हो जाती है तो उसके भार से झुक जाते हैं ॥४॥

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेह मूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥५॥

संसार में प्रीति सदा दुःखदायी होती है। स्नेह करने से भय उत्पन्न होता है। स्नेही ही सारे दुःखों का मूल है। अतः किसी से स्नेह न बढ़ा कर सुखपूर्वक रहे ॥५॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥६॥

जब तक विपत् आती नहीं तो धीरज रख कर उसे दूर करने का उपाय करना चाहिए और आई हुई को भुगत लेना चाहिए। जो भविष्य पर भरोसा करते हैं वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥६॥

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
राजानमनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥७॥

धर्मात्मा राजा की प्रजा भी धर्मात्मा होती है और पापी राजा की प्रजा भी पापी होती है। सब विद्वान् लोग यही कहते हैं कि जैसा राजा वैसी ही प्रजा होती है ॥७॥

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् ।
यतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥८॥

धर्मरहित मनुष्य को मरे हुए के समान समझना चाहिए। धार्मिक मनुष्य मरे हुए भी चिरंजीव होते हैं। उनके जीवन को ही जीवन समझना चाहिए ॥८॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥९॥

यदि किसी मनुष्य ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से कुछ भी नहीं पाया है तो बकरा के गले के स्तन के समान उसका जन्म व्यर्थ और निष्फल है ॥९॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना ।
अशक्तास्तत्पथं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥१०॥

दुर्जन मनुष्य स्वय तो उच्चपद को पाता नहीं है वह दूसरे के यशसे जल जाता है और तो कुछ उससे होता ही नहीं वह फिर उसकी ही निन्दा करता है ॥१०।

बन्धाय विषयासंगो मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥११॥

विषयासक्त मन बन्धन का, विषयहीन मन मोक्ष का कारण होता सब बातों का कारण करण केवल मन ही होता है ॥११॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्मनः ।
यत्र तत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥१२॥

जब देह का अभिमान नष्ट हो जाता है और ईश्वरीय ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तो फिर जहां-जहां मन रहता है वहीं समाधि समझनी चाहिये ॥१२॥

ईप्सितं मनसा सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
दैवायत्तमतः सर्वं तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥१३॥

मन की चाही किसी की नहीं होती है, सब दैव के ही अधीन हाता हैं। इसीलिए सन्तोष रखना चाहिये ॥१३॥

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम् ।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥१४॥

जैसे हज़ारों गायों में भी वत्स अपनी माता के पास ही जाता है वैसे ही अपनी करनी का फल भी अपने आपको ही भोगना पड़ता है ॥१४॥

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम् ।
जनो दहति संसर्गानं संगविवर्जनात् ॥१५॥

स्थितिरहित प्राणी को न जग में ही आनन्द आता है और न वन में ही। वन में तो जन समाज का साथ छोड़कर वह दुःखी रहता है और जग में संसर्ग से वह जलता है ॥१५॥

खनित्रेण खनित्रैव भूतले वारि विन्दति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥१६॥

जैसे कुदारी से खोद मनुष्य पाताल से भी जल को प्राप्त करता है वसे ही गुरुगत विद्या भी सेवा करने वाले को ही मिलती है ॥१६॥

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वते ॥१७॥

फल मनुष्य को कर्म के अनुसार मिलता है और बुद्धि भी कर्मों के अनुसार ही मिलती है। तो भी विद्वान् और साधु लोग विचार कर ही कार्य करते हैं ॥१७॥

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽन्ययने जपदानयोः ॥१८॥

अपनी स्त्री भोजन और धन इन तीनों में सन्तोष करना चाहिए। पढ़ना, जप और दान इन तीनों में कभी सन्तोष नहीं करना चाहिए ॥१८॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते।
श्वानयोनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥१९॥

चाहे एक अक्षर ही किसी से सीखा हो परन्तु फिर भी यदि कोई उसे गुरु मानकर मस्तक नहीं नवाता तो वह सौ बार कुत्ते का जन्म पाकर भी अन्त में चाण्डाल बन जाता है ॥१९॥

युगान्ते प्रचलेन्मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः।
साधवः प्रतिपन्नार्थान्न चलन्ति कदाचन ॥२०॥

युग के अन्त में सुमेरु चल पड़ता है, कल्प के अन्त से सातों समुद्र भी मर्यादा को छोड़ देते हैं परन्तु साधु जन कभी भी विचलित नहीं होते ॥२०॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥

—⁝※⁝—

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

—:०:—

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमग्नं सुभाषितम् ।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञाऽभिधीयते ॥१॥

पृथ्वी पर प्रिय वचन, अन्न और जल ये तीन रत्न हैं परन्तु मूर्ख मनुष्य पत्थर के टुकड़ों को रत्न कहते हैं ॥१॥

दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनव्यसनानि च ।
आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ॥२॥

दरिद्रता, रोग, बन्धन, दुःख और कुसंस्कार, ये सब प्राणियों के अधर्म रूपी वृक्ष के फल हैं ॥२॥

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥३॥

स्वस्थ शरीर की महिमा बहुत बड़ी है, क्योंकि वह बार-बार नहीं मिलता । मित्र, स्त्री, धन और जायदाद चाहे तो कई हजार मिल सकते हैं ॥३॥

बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुञ्जयः ।
वर्षाधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥४॥

यह निश्चित है कि बहुत लोगों का समुदाय शत्रु को जीत लेता है । जैसे तृणसमूह बरसते मेघ को भी हटा देता है, अर्थात् घास की झोंपड़ी के भीतर वर्षा का पानी नहीं पहुंचता ॥४॥

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तरं वस्तुशक्तितः ॥५॥

दुर्जन पुरुष में गुप्त वार्ता, सुपात्र में दान, जल में तेल और बुद्धिमान् में शास्त्र ज्ञान यदि थोड़ा हो तो भी वह अधिक फैल जाता है ॥५॥

धर्माख्याने श्मशाने च नराणां या मतिर्भवेत् ।
सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत् को न मुच्येत बन्धनात् ॥६॥

धर्म कथा में और श्मशान में मनुष्यों को जो ज्ञान होता है यदि वह सदा बना रहे तो कौन संसार के बन्धनों से बंधा रह सकता है, अर्थात् सब मुक्त हो जाएं ॥६॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य न स्यान्महोदयः ॥७॥

पश्चात्ताप करने के समय जैसी सुबुद्धि पैदा होती है यदि सदा ही वैसी बनी रहे तो किसका उदय नहीं हो सकता ॥७॥

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये ।
विस्मयो न हि कर्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा ॥८॥

शूरता, दान, नीतिज्ञता, तप, नम्रता और विज्ञान इसमें कभी आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि पृथ्वी पर बहुत अधिक रत्न हैं ॥८॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः ।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरगः ॥९॥

जो जिसके मन में समाया हुआ है वह दूर रहते भी दूर नहीं रहता । और जो जिसके मन नहीं बसता वह अति निकट रहता हुआ भी दूर ही रहता है ॥९॥

यस्य चाप्रियमिच्छेत्तु तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम् ।
व्याधो मृगवधं कर्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥१०॥

जिसका अप्रिय करने की इच्छा हो उससे सदा प्रिय वचन बोलना चाहिए। शिकारी मृग का शिकार करने के लिए प्रिय गीत गाकर ही उसका शिकार करता है ॥१०॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः ।
सेव्यतां मध्यभावेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः ॥११॥

आग, स्त्री, राजा और गुरु, इनसे दूर रहने पर ये कुछ फल नहीं देते हैं और बहुत समीप आने पर ये नाश कर देते हैं, अतः इनसे न निकट ही रहना चाहिए और न अधिक दूर ही ॥११॥

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खः सर्पो राजकुलानि च ।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ॥१२॥

आग, पानी, स्त्री, मूर्ख, सांप और राजा इन छहों का सदा ध्यान रखना चाहिए, अर्थात् इनसे सदा सावधान रहना चाहिए, क्योंकि ये सेवा करते-करते ही उल्टे फिर जाते हैं, अर्थात् प्रतिकूल होकर प्राण हर लेते हैं ॥१२॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥१३॥

केवल धर्मात्मा पुरुषों का जीवन ही जीवन है या फिर गुणियों का जीवन भी श्रेष्ठ है और जो मनुष्य धर्म और गुण-रहित होकर रहते हैं उनका जीवन व्यर्थ समझना चाहिए ॥१३॥

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादशस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥१४॥

यदि सम्पूर्ण संसार को वश में करना है तो परापवाद रूपी शस्य में चरती हुई अपनी जिह्वा को हटाओ (अर्थात् वश में करो) ॥१४॥

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः ॥१५॥

जो प्रसङ्ग के अनुकूल वाणी को और प्रभाव करने वाले प्रिय विचारों को, और अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध को, करना जानता है, उसे पण्डित कहते हैं ॥१५॥

एक एव पनार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः ।
कुणपं कामिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः ॥१६॥

संसार में शरीर को तीन प्रकार देखा जाता है, योगी मनुष्य तो मृत मिट्टी के सदृश शरीर को देखते हैं, कामी पुरुष सुन्दर स्त्री के स्वरूप से, और कुत्ते मांस रूप से देखते हैं ॥१६॥

सुसिद्धौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१७॥

अपने घर का दोष, पवित्र धर्म विधि से सिद्ध की गई औषध, कुभोजन, मैथुन और बुरी बात, इन सबको बुद्धिमान् प्रकट नहीं करते ॥१७॥

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः ।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक् प्रवर्तते ॥१८॥

कोयल की वाणी से तब तक लोग प्रसन्न नहीं होते जब तक वह चुप रहती है, और फिर अपनी वाणी को मीठी बना कर सभी स्थानों को गुंजायमान कर देती है ॥१८॥

धर्मं धनं च धान्यञ्च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतञ्च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥१९॥

अन्न, धर्म, धन, गुरु के वजन और औषध को सदा विधिपूर्वक सेवन करना चाहिए, अन्यथा जीवन भी चला जाता है ॥१९॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२०॥

दुर्जन का साथ छोड़ कर, सत्-पुरुष की संगति करनी चाहिए, रात-दिन पुण्य करके सदा ईश्वर का भजन करते रहना चाहिए और नित्य संसार की अनित्यता का विचार करना चाहिए ॥२०॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्याय ॥

अथ पंचदशोऽध्याय ॥१५॥

—:*:—

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥१॥

ज्ञान, जटा, और भस्म लेपन और मुक्ति की उन्हें क्या आवश्यकता और चिन्ता है जिनका स्वभाव ही सब जीवों पर दया करना है ॥१॥

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणो भवेत् ॥२॥

चाहे कोई एक अक्षर की शिक्षा क्यों न दे वह भी गुरु कहलाता है। पृथ्वी पर ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिससे गुरु का बदला चुकाया जा सकता है ॥२॥

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानन्मुखभंगो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥३॥

कांटों की तरह दुष्ट के भी दो इलाज हैं, या तो उससे किनारा करे अथवा जूते मार कर उसका मुख तोड़ दे ॥३॥

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं,
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं,
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥४॥

सूर्य निकलते समय और छिपने के समय जो मनुष्य सोता है, जिसके दातों पर मैल है, जो कठोर वचन बोलता है, यदि वह लक्ष्मीपति विष्णु ही क्यों न हो फिर भी लक्ष्मी उसको छोड़ ही देती है ॥४॥

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं,
दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते,
ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥५॥

जब मनुष्य धन हीन हो जाता है तो उसके सेवक, मित्र, और स्त्री सब ही उसका साथ छोड़ देते हैं, और जब वह फिर धनी बन जाता है तब सब उसकी शरण में आ जाते हैं। इसीलिए धन ही सबका बन्धु है ॥५॥

अन्यायोपार्जितं प्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥६॥

अन्याय से कमाया हुआ धन दस वर्ष ठहरता है, और ग्यारहवें वर्ष वह ब्याज और धन समेत नष्ट हो जाता है ॥६॥

अयुक्तं स्वामिनं युक्तं नीचस्य दूषणम् ।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शङ्करभूषणम् ॥७॥

समर्थ ते लिए अनुचित भी उचित और नीच के उचित भी दोष हो जाता है। जैसे कि विष भी शिव का तो श्रृंगार बन गया और अमृत भी राहु के लिए मौत बना ॥७॥

तद्भोजनं यद् द्विजभुक्तशेषं,
तत्सौहृदं क्रियते यत्परस्मिन् ।

स बुद्धिमान् यो न करोति पापं,
दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥८॥

ब्राह्मण के भोजन से बचा हुआ भोजन करे, समान से प्रीति करे, और घमण्ड त्याग कर धर्म करे, ऐसी बुद्धिमानों की नीति है ॥८॥

मणिर्लुण्ठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते ।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः ॥९॥

चाहे मणि पैरों में पड़ा रहे और काच मस्तक पर रखा हो, परन्तु फिर भी मोल लेने और बेचने के समय मणि मणि ही रहती है और काच काच ही रहता है, अर्थात् मणि का मूल्य ही अधिक होता है ॥९॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः,
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥१०॥

समय बहुत थोड़ा है और विद्याएं बहुत हैं। शास्त्र का विस्तार अधिक है और विघ्न भी थोड़े नहीं हैं, अतः इनमें से केवल सार ही ले लेना चाहिए। जैसे हंस दूध और पानी के मिश्रण से केवल दूध ही को पी लेता है ॥१०॥

दूरागतं पथि श्रान्तं वृथा च गृहमागतम् ।
अनर्चयित्वा यो भुंक्ते स वै चाण्डाल उच्यते ॥११॥

जो स्वार्थरहित अपने घर पर आ गया हो, दूर से चल कर थका हुआ आया हो। यदि कोई उसे पूजे बिना स्वयं भोजन करता है तो वह मनुष्य चाण्डाल कहलाता है ॥११॥

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा ॥१२॥

जो वेद और धर्मशास्त्र पढ़े हैं और वाद-विवाद करते हैं परन्तु आत्मा को नहीं पहचानते वे इस प्रकार ही हैं जैसे कड़छी के लिए रसोई का स्वाद ॥१२॥

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे ।
तरन्त्धोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः ॥१३॥

संसार रूपी सागर में ब्राह्मण रूपी नाव की कैसी विचित्र रीति है कि यदि उसके नीचे रहें तो पार हो जाते हैं और ऊपर चढ़ने पर फिर नीचे गिर जाते हैं ॥१३॥

अयममृतनिधानश्चाप्रगोऽप्योषधीना-
मम्रृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः ।
भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः
परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति ॥१४॥

अनेक गुणशील चन्द्रमा दिन में सूर्य मंडल के निकट जाकर उसको प्राप्त करके अत्यन्त तेजहीन हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे के घर सदा बैठ कर, कौन ऐसा है जो छोटा नहीं बन जाता ॥१४॥

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः,
कमलिनीमकरन्दमदालसः ।
विधिवशात्परदेशमुपागतः,
कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥१५॥

भौंरा कमलिनी के पत्तों में रहकर फूल के रस से मद मत्त बना रहता है परन्तु परदेश में जाकर कौरैया के पुष्प को ही बहुत मानता है, जिसमें न रस है और न गन्ध ॥१५॥

पीतः क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषाद्,
आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे ।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तस्य पूजानिमित्तं,
तस्मान्खिन्ना सदैव द्विजकुलनिलयं नाथ युक्तं त्यजामि ॥१६॥

लक्ष्मी देवी कहती है कि अगस्त्य द्विज ने रुष्ट होकर मेरे पिता समुद्र को पी डाला, भृगु विप्र ने क्रोध के मारे मेरे पति विष्णु के लात मारी, जो उनकी सहचरी सरस्वती देवी हैं उनसे मेरा वैर है और जो नित्य पार्वती के पति शिव की पूजा करने को मेरे घर (कमल) को तोड़ते हैं उन ब्राह्मणों के घर में मैं कभी भी पैर नहीं रखूंगी । ब्राह्मण ही मेरे शत्रु हैं जिन्होंने मेरा सर्वनाश किया ॥१६॥

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यद् ।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिः निष्क्रियोभवति पङ्कजकोशे ॥१७॥

संसार में बन्धन तो और भी हैं परन्तु प्रीति का बन्धन सबसे बुरा होता है, क्योंकि काठ को छेदने वाला काठ का दुश्मन भौंरा कमल में बन्द होकर भी उसको नहीं छेदता, क्योंकि कमल से उसकी प्रीति है ॥१७॥

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गंधं,
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ।
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः ॥१८॥

चन्दन वृक्ष कट जाने पर भी गन्ध को नहीं छोड़ता । हाथी बूढ़ा होने पर भी विलास को नहीं छोड़ता । ईख कोल्हू में पेरी जाने पर भी मीठी होती है और दरिद्र होने पर भी कुलीन कभी सुशीलता नहीं छोड़ते ॥१८॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

—:※:—

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये,
स्वर्गद्वारकपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेपि नालिंगितं,
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥१॥

संसार के बन्धन से मुक्त होने को जिसने भगवान् को नहीं भजा और सुरद्वार (स्वर्ग) पाने को जिन्होंने धर्म नहीं किया। नारी के उरोजों का स्वप्न में भी जिसने आलिङ्गन न किया वह केवल माता के यौवन रूपी वृक्ष को काटने के लिए कुठार के समान भार स्वरूप होकर ही रहते हैं ॥१॥

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥२॥

स्त्रियां बात किसी के साथ कर रही होती है और उस पुरुष की नजर बचाकर किसी और को देख रही होती है। मन में किसी तीसरे का चिन्तन करती रहती हैं उनका मन अनेकों की ओर आकृष्ट रहता है ॥२॥

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी ।
स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत् क्रीडाशकुन्तवत् ॥३॥

जो मूर्ख मनुष्य मोह के वश होकर स्त्री की प्रीति को सत्य जानते

हैं और फिर उनके इशारों पर नाचते हैं वह खेल के पक्षी के समान होते हैं ॥३॥

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिणः
कस्यापदोऽस्तं गताः,
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः
को नाम राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य न गोचरत्वमगमत्
कोऽर्थी गतो गौरवं,
को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पतितः
क्षेमेण यातः पथिः ॥४॥

धन होने से कौन घमण्डी नहीं बन जाता है ? विषयी होने से किसके दुख नहीं बढ़ जाते हैं ? स्त्रियों ने किसके मन को खण्डित नहीं किया ? राजा कौन को प्यारा होता है ? ॥४अ॥

दुष्ट के वश में होकर कौन सुखी रह सकता है, काल को कौन जीत सकता है ? लघु रूप (याचक का) रख कर किस याचक ने बड़ाई प्राप्त की है अर्थात् किसी ने नहीं ॥४ब॥

न निर्मितः चैव न दृष्टपूर्वः
न श्रूयते हेममयः कुरंगः ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य
विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥५॥

सोने का हिरण कभी नहीं देखा गया और न कभी किसी ने सुना ही था परन्तु फिर भी रामचन्द्र जी उसके धोखे में आ गये । क्योंकि विनाश को आता हुआ देखकर बुद्धि नहीं ठहरती है ॥५॥

गुणैरुत्तमतां यान्ति नोच्चैरासनसंस्थितैः ।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥६॥

ऊंचे आसन पर बैठ कर भी बिना गुणों के उत्तमता नहीं आती । जिस प्रकार यदि काग भवन की चोटी पर भी बैठ जाय तो वह गरुड़ नहीं बन जाता ॥६॥

गुणाः सर्वत्रपूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः ।
पूर्णेन्दु किं तथा वन्द्यो निष्कलङ्को यथा कृशः ॥७॥

धनवान् की सब जगह सदा पूजा नहीं होती, गुणवान् ही सर्वत्र पूजे जाते हैं । जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्र से भी द्वितीया का चन्द्रमा अधिक वन्दनीय है ॥७॥

परस्तुतगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ॥८॥

जो अपनी स्वयं बड़ाई करते हैं वे गुणवान् भी अगुणी हो जाते हैं और जिनके गुणों की दूसरे लोग प्रशंसा करते हैं वे बिना गुणों के भी गुणवान् कहलाते हैं ॥८॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥९॥

अधिक ज्ञान पाने से, गुण और सुन्दरता स्वयं बढ़ जाते हैं जैसे सोने में जड़े जाने के बाद रत्न की शोभा बहुत बढ़ जाती है ॥९॥

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥१०॥

गुणों से युक्त ईश्वर के समान भी निराश्रय और अकेला पुरुष दुःख ही पाता है । जैसे अनमोल माणिक्य भी सोने में जड़े जाने की अपेक्षा करता है ॥१०॥

अति क्लेशेन ये अर्था धर्मस्यातिक्रमेण तु ।
शत्रूणां प्रणिपातेन अर्थास्ते मा भवन्तु मे ॥११॥

जो धन बहुत दुःख और अधर्म करने से और बैरियों की शरण में जाने से मिले चाहे वह मात्रा में बहुत ही क्यों न हों मुझे उसके पाने की इच्छा नहीं है ॥११॥

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।
या तु वेश्येव सामान्या पथिकैरपि भुज्यते ॥१२॥

उस धन से लाभ ही क्या है जो केवल घर की वधू के समान है । जो साधारण वेश्या की भांति है, वह श्रेष्ठ है जो पथिकों से भी भोगा जाता है ॥१२॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥१३॥

धन, जीवन, भोजन, स्त्री ये मनुष्य को तृप्त करने में कुछ भी सहायक नहीं होते और मनुष्य भूत काल, भविष्यत् काल और वर्तमान में अतृप्त ही रहे, रहेंगे और हैं ॥१३॥

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः ।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम् ॥१४॥

दान, यज्ञ, बलि होम और सब प्रकार का क्रिया नष्ट हो जाती हैं । परन्तु सत्यपात्र को दिया गया दान और सब जीवों को अभयदान यह कभी नष्ट नहीं होते ॥१४॥

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः ।
वायुना किन्न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥१५॥

रुई तिनके से हल्की होती है परन्तु याचक उससे भी हल्का होता

है वायु उसको इसी कारण से नहीं उड़ाती कि कहीं यह मुझ से भी कुछ मांगने लगेगा ॥१५॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभंगेन जीवनात् ।
प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभंगे दिने दिने ॥१६॥

अपमान होने से मृत्यु ही अच्छी है क्योंकि मृत्यु से तो थोड़ी देर के लिए ही दुःख होता है परन्तु अपमान से पग-पग पर और प्रति दिन दुख होता है ॥१६॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सदा तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥१७॥

प्रिय वचन बोलने से सब सन्तुष्ट होते हैं अतः प्रिय वचन बोलना चाहिए । वाणी में भी क्या दरिद्रता, उसमें तो अमृतरूपी प्रियता घोलनी चाहिए ॥१७॥

संसारकूटवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादं संगतिः सुजने जने ॥१८॥

इस ससार रूपी वृक्ष के दो फल हैं उन्हें अमृत समान जानना चाहिए । एक तो सत्संगति और दूसरा प्रिय बोलना ॥१८॥

बहुजन्मसु चाभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन देही चाभ्यस्यते पुनः ॥१९॥

बहुत समय से तप, दान और पढ़ने का अभ्यास किया है । उसी ही अभ्यास के संयोग से जीव फिर अभ्यास करता है ॥१९॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥२०॥

पुस्तकों में विद्या और दूसरे के हाथ में जो धन होता है वह धन और विद्या विपत्काल में काम नहीं देते ॥२०॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

—:०००:—

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
सभामध्ये न शोभन्ते जारगर्भा इव स्त्रियः ॥१॥

जिन लोगों ने पुस्तक को गुरु के पास रह कर नहीं पढ़ा, स्वयं ही उसका अध्ययन किया हो, व्यभिचार से गर्भ धारण करने वाली स्त्री के समान समाज में शोभा नहीं पाते ॥१॥

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्धिंसने प्रतिहिंसनम् ।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दौष्ट्यं समाचरेत् ॥२॥

जैसे के साथ तैसा ही व्यवहार करना चाहिए, अर्थात् उपकारी के साथ उपकार और दुष्ट के साथ दुष्टता। चाहे मारने वाले को मार दो। इसमें कुछ दोष नहीं है ॥२॥

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमः ॥३॥

जो अप्राप्य और दूर है वह सब तप से सिद्ध हो सकता है इसलिए तप को ही सुन्दर और प्रबल जानना चाहिए अर्थात् तप ही बड़ा है ॥३॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः,
सत्यं चेत्तपसापि किं शुचि मनः यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥४॥

लोभ के समान दूसरा दोष नहीं, चुगलखोरी के समान दूसरा पाप नहीं, सत्य बराबर तप नहीं, पवित्र मन के बराबर तीर्थ और जप नहीं, सज्जनता के समान गुण नहीं, सुविद्या के समान धन नहीं, अच्छे प्रताप के समान भूषण नहीं और अपयश है तो उसको मरण ही समझना चाहिये ॥४॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी ।
शंखो भिक्षाटनं कुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठते ॥५॥

जिसका पिता श्रेष्ठ वीर समुद्र है, जिसकी बहन माया (लक्ष्मी) है ऐसा शशी के समान चमकता सुआ शख भी भीख मांगता है। यह निश्चय है कि बिना दान दिये धन नहीं मिलता ॥५॥

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः ।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता ॥६॥

शक्तिहीन साधु हो जाता है और धनहीन ब्रह्मचारी हो जाता है, वृद्धा स्त्री पतिव्रता बन जाती है और चतुर रोगी देवभक्त बन जाता है ॥६॥

नान्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा ।
न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुर्दैवतं परम् ॥७॥

अन्न और जल के समान कोई दान नहीं, द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं, गायत्री के समान कोई मन्त्र नहीं और माता के समान भी देवता नहीं ॥७॥

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायाः शिरो विषम् ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम् ॥८॥

सांप के दांत में विष रहता है, मक्खी के सिर में तथा बिच्छू की

केवल पूंछ में विष रहता है। परन्तु दुष्ट मनुष्य के सब अंगों में विष रहता है ॥८॥

पत्युराज्ञां विना नारी उपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुराहरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥९॥

पति की आज्ञा बिना उपवास व्रत करने वाली स्त्री चतुर नहीं कहलाती है। उसके पति की आयु नष्ट होती है और वह स्त्री नरक में जाती है ॥९॥

न दानैः शुध्यते नारी उपवासशतैरपि ।
न तीर्थ सेवया तद्वद् भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥१०॥

स्त्री न दान देने से, न उपवास करने से और न तीर्थ करने से शुद्ध रह सकती है। जो पति की सेवा में रहकर उसके चरणरज का सेवन करती रहे वही स्त्री पवित्र है ॥१०॥

पाद्यशेषं पीतशेषं सन्ध्याशेषं तथैव च ।
श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥११॥

पीने से संध्या करने से, पांव धोने से जो जल बचता है वह कुत्ते के मूत्र के समान होता है, इसे पी ले तो चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥११॥

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन
स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन ।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन
ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन ॥१२॥

दान करने से हाथ की शोभा होती है कंकण पहनने से नहीं,

स्नान से शरीर की शुद्धि होती है चन्दन के लेप से नहीं, तृप्ति सम्मान से होती है भोजन से नहीं और मुक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है वेष से नहीं ॥१२॥

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम् ।
आत्मरूपं जले पश्येच्छक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥१३॥

जलमें अपना स्वरूप देखनेसे, पत्थर पर से माथे पर चन्दन लगाने से, नाई के घर जाकर बाल बनवाने से इन्द्र की भी शोभा (लक्ष्मी) कम हो जाती है ॥१३॥

सद्यः बुद्धि हरी तुंडी सद्यः प्रज्ञाकरा वचा ।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः ॥१४॥

कुंदरू से तत्काल बुद्धि घटती है और बच से फिर तत्काल बढ़ जाती है, स्त्री शक्ति को हर लेती है और दूध शीघ्र शक्ति देने वाला है ॥१४॥

यदि रमा यदि च रामा यदि तनयो विनयगुणोपेतः ।
तनये तनयोत्पत्तिः सुखमिन्द्रे किमाधिक्यम् ॥१५॥

यदि किसी घर में धन हो और सुलक्षणा स्त्री रहती हो, पुत्र विनय तथा गुण युक्त है, और पुत्र का पुत्र भी हो, तो वह घर इन्द्र-लोक के समान है ॥१५॥

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ॥१६॥

जिसके मन में परोपकार जग जाता है उनकी विपत्ति नष्ट हो जाती है, उन्हें पग-पग पर धन मिलता है ॥१६॥

आहारनिद्राभयमैथुनानि
समानि चैतानि नृणां पशूनाम् ।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥१७॥

भोजन, निद्रा, भय और स्त्री-प्रसंग, यह कार्य मनुष्य और पशु दोनों ही समान रूप से करते हैं। मनुष्यों में केवल ज्ञान ही विशेष है जो पशुओं को नहीं होता। यदि मनुष्य में ज्ञान नहीं तो वह भी पशु तुल्य है ॥१७॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै
र्दूरीकृताःकरिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।
तस्यैव गण्डयुगमंडनहानिरेषा
भृंगाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥१८॥

यदि धन के मद से अन्धे धनी गुणियों को आदर नहीं देते तो आदर पाने के लिये बहुत से स्थान है। जिस प्रकार मस्त हाथी अपने कानों पर मंडराते भंवरों को उड़ा देता है तो उसी की शोभा कम हो जाती है। भ्रमर तो फिर कमल के वन में जाकर रहने लगते हैं ॥१८॥

राजा वेश्या यमश्चाग्निः तस्करो बालयाचकौ ।
परदुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः ॥१९॥

राजा, वेश्या, अग्नि यम बालक, याचक, चोर और कण्टक ये आठों दूसरे के दुःख को नहीं जानते ॥१९॥

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥२०॥

हे बाला ! तुम नीचे क्या देखती हो ? पृथ्वी पर तुम्हारी क्या वस्तु गिर पड़ी है ?

मेरा यौवन रूपी मोती खो गया है इसीलिए मैं कमर झुकाकर उसे ही देख रही हूं ॥२०॥

व्यालाश्रयापि विकलापि सकण्टकाऽपि,
वक्रापि पङ्किलभवापि दुरासदापि ।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तो,
रेको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान् ॥२१॥

हे केतकी तेरे एक गन्ध गुण से ही सैकड़ों दोष दूर हो गये हैं। तू कीचड़ में पैदा होती है, टेढ़ी है, सांपों का घर है, न फल देने वाली है, कांटों से युक्त तथा बहुत दुःखों से प्राप्त होने वाली है ॥२१॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तम् ॥

वी० पी० द्वारा पुस्तकें मंगाने का एक मात्र स्थान
देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार दिल्ली–६

२०/२२-७-६७टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली)में मुद्रित